इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD - 11

हिन्दी कहानी

हिन्दी कहानी

इग्नू
जन जन का
विश्वविद्यालय

इन्दिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-11
हिंदी कहानी

खंड

5

इकाई 17
पार्टीशन : विश्लेषण और मूल्यांकन 5

इकाई 18
स्विमिंग पूल : विश्लेषण और मूल्यांकन 14

इकाई 19
बायोडाटा : विश्लेषण और मूल्यांकन 24

इकाई 20
सिलिया : विश्लेषण और मूल्यांकन 40

इकाई 21
तलाश : विश्लेषण और मूल्यांकन 53

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. नित्यानंद तिवारी
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. राजेन्द्र कुमार
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. ए. अरविन्दाक्षन
पूर्व समकुलपति
महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय
वर्धा

प्रो. हरिमोहन शर्मा
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. गोपेश्वर सिंह
प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संकाय सदस्य

प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रो. सत्यकाम
प्रो. शत्रुघ्न कुमार
डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
(पाठ्यक्रम संयोजक)

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई सं.
डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव हिन्दी संकाय, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	17
प्रो. सत्यकाम हिन्दी संकाय, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	18
डॉ. अवधेश मिश्र हिन्दी विभाग, क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर	19
डॉ. मुन्ना तिवारी हिन्दी विभाग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फाजिलनगर, कुशीनगर	20
डॉ. प्रमोद कुमार अंग्रेजी संकाय, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली	21

विशेष सहयोग : डॉ. नमिता सत्येन
डॉ. वावळकर शिवदत्ता बाजीराव
सुश्री भावना सरोहा

सचिवालयिक सहयोग : सुश्री हेमलता

(पुनर्लेखन : डॉ. वावलकर शिवदत्ता बाजीराव)

सामग्री निर्माण

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

मई, 2016

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2016

ISBN-978-93-86100-42-9

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक, मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

Paper Used : "Agro based Environment Friendly"

लेजर टाइप सेटिंग : एच. डी. कंम्यूटर क्रॉफ्ट, डब्लु जैड 36ए, लाजवंती गार्डन, नई दिल्ली 110046

मुद्रक : अमेटी ऑफसेट प्रिटर्स, 12/38, साइट - IV, साहिबाबाद, इन्डस्ट्रियल एरिया, गाजियाबाद,(उ.प्र.)

खण्ड-5 परिचय

यह कहानी संबंधी माड्यूलर के तीसरे पाठ्यक्रम 'हिन्दी कहानी' का पाँचवाँ खण्ड है। इस खण्ड में कुल पाँच इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं–

इकाई - 17 'पार्टीशन' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई - 18 'स्विमिंग पूल' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई - 19 'बायोडाटा' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई - 20 'सिलिया' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई - 21 'तलाश' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इस खण्ड में पार्टीशन (स्वयंप्रकाश), स्विमिंग पुल (असगर वजाहत), बायोडाटा (अखिलेश), सिलिया (सुशीला टाकभौरे), तलाश (जयप्रकाश कर्दम) जैसी अत्यंत महत्वपूर्ण कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस खण्ड को पढ़ने के पश्चात आप स्वयंप्रकाश, असगर वजाहत, अखिलेश, सुशीला टाकभौरे और जयप्रकाश कर्दम जैसे महत्वपूर्ण कहानीकारों की कहानीकला से भी परिचित होंगे/होंगी।

हमें विश्वास है, इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात आप हिन्दी कहानी के विस्तृत परिसर से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी। इस खण्ड में शामिल कहानियाँ इन लेखकों की सर्वकालिक महान कहानियाँ हैं। 'सिलिया' और 'तलाश' में दलित जीवन की प्रामाणिक अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार इस खण्ड की अन्य कहानियों को पढ़ते हुए मन और विवेक पर उनका गहरा असर पड़ता है।

इस खण्ड को पढ़ते हुए आप इसमें शामिल कहानीकारों के रचना संसार का भी संक्षिप्त परिचय पा सकेंगी/सकेंगे। इन कहानियों के विश्लेषण से गुजरते हुए आप देखेंगे/देखेंगी कि किसी कहानी की श्रेष्ठता के निर्धारण में उसकी कथावस्तु के साथ-साथ उसके रूप पक्ष का भी बड़ा योगदान होता है। यह खण्ड इस पाठ्यक्रम का अन्तिम खण्ड है। हमें विश्वास है, इस पाठ्यक्रम के सभी खण्डों के अध्ययन के पश्चात आप हिन्दी कहानी का एक विस्तृत परिचय अवश्य प्राप्त करेंगी/करेंगे।

शुभकामनाओं सहित।

इकाई 17 'पार्टीशन' : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 कहानीकार स्वयं प्रकाश

17.3 पार्टीशन : पाठ बोध और प्रक्रिया

17.4 पार्टीशन की भाषा और शैली

17.5 सारांश

17.6 अभ्यास

17.0 उद्देश्य

यह आपके पाठ्यक्रम 'हिन्दी कहानी' की सत्रहवीं इकाई है। इससे पढ़ने के बाद आपः

- स्वयं प्रकाश के लेखन से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- समाजिक विभाजन की बढ़ती खाई के कुछ कारणों को जान सकेंगे/सकेंगी;
- विभाजन की त्रासदी का अनुमान कर सकेंगे/सकेंगी;
- कहानी के मूल मंतव्य (स्वभाव) का आशय समझ सकेंगे/सकेंगी;
- वास्तविक भारतीयता की भावना का बोध कर सकेंगे/सकेंगी।

17.1 प्रस्तावना

स्वयं प्रकाश एक प्रगतिशील दृष्टि रखने वाले कथाकार हैं। उनकी कहानियाँ सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक बदलाव को अपना उपजीव्य बनाती हैं। पाठ्यक्रम में लगाई गई कहानी 'पार्टीशन' विभाजन के सड़सठ वर्ष बाद पुनः न सिर्फ विभाजन के दुःख का स्मरण कराती है बल्कि उसके वर्तमान प्रभाव पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित भी करती है। यह कहानी उन राजनीतिक और सांस्कृतिक आशयों को खोजने की कोशिश करती है, जो नित नए विभाजन की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। यह कहानी उस विकलता को भी पाठकों की चेतना का हिस्सा बनाती है जो ईमानदार लोगों के भीतर अभी बची हुई है। कहानी में कुर्बान भाई का परिचय देते हुए लेखक ने यह शेर यू ही नहीं दिया है-

फक़त पासे वफादारी है, वरना कुछ नहीं मुश्किल।

बुझा सकता हूँ अंगारे, अभी आँखों में पानी है।

यह शेर इस कहानी की जरूरत भी है। कह सकते हैं, यह कहानी की संरचना में एक जरूरी औजार है। विश्लेषण के क्रम में हम इस शेर की व्याख्या करेंगे। यहाँ यह संकेत ही पर्याप्त है कि अब सब कुछ है बस लोगों की आँख में पानी नहीं है।

17.2 कहानीकार स्वयं प्रकाश

कथाकार स्वयं प्रकाश का जन्म 20 जनवरी, 1947 को मध्यप्रदेश के इन्दौर में हुआ था। उनकी गणना हिन्दी के अग्रणी कथाकारों में होती है। स्वयं प्रकाश की प्रकाशित पुस्तकें

हैं-'मात्रा और भार', 'सूरज कब निकलेगा', 'आसमां कैसे कैसे', 'अगली किताब', 'आएँगे अच्छे दिन भी', 'आदमी जात का आदमी', 'आधार चयन', 'चर्चित कहानियाँ', 'पार्टीशन', 'अगले जन्म', 'संधान', 'आधी सदी का सफरनामा', 'मेरी प्रिय कथाएँ', 'स्वयं प्रकाश की चुनिंदा कहानियाँ', 'मेरी प्रिय कहानियाँ' (कहानी संग्रह), 'ज्योतिरथ के सारथी', 'जलते जहाज पर', 'उत्तर जीवन कथा', 'बीच में विनय', 'ईंधन' (उपन्यास), 'स्वान्तः दुखाय', 'दूसरा पहलू', 'रंगशाला में एक दोपहर', 'एक कथाकार की नोटबुक' (निबंध), 'हमसफरनामा' (रेखाचित्र), 'फीनिक्स' (नाटक), 'प्यारे भाई रामसहाय', 'परमाणु भाई की दुनिया में', 'हमारे विज्ञान रत्न' (बाल साहित्य), 'पंगु मस्तिष्क', 'अन्यूता', 'लोकतांत्रिक विद्यालय' (अनुवाद), 'सुनो कहानी', 'हिन्दी की प्रगतिशील कहानियाँ' (संपादित पुस्तकें)। उन्होंने आठवें दशक में 'क्यों' नामक महत्वपूर्ण पत्रिका का संपादन किया था। इन दिनों प्रसिद्ध पत्रिका 'वसुधा' के संपादक है। अध्ययन के लिए चुनी गई कहानी 'पार्टीशन' पर एक टेलीफिल्म भी बनी है। स्वयं प्रकाश को पहल सम्मान, कथाक्रम सम्मान और भवभूति अलंकरण सहित कई महत्वपूर्ण सम्मान-पुरस्कार भी मिले हैं।

17.3 पार्टीशन : पाठ बोध और प्रक्रिया

पार्टीशन, जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, विभाजन को केन्द्र में रखकर लिखी गई कहानी है। हिन्दी में 1947 के देश विभाजन पर केन्द्रित कई कहानियाँ हैं। कुछ महत्वपूर्ण उपन्यास भी हैं। जैसे ही कोई विभाजन का जिक्र करता है वैसे ही साहित्य प्रेमियों के जेहन में मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' या भीष्म साहनी की कहानी 'और अमृतसर आ गया' की स्मृति ताजा हो जाती है। विभाजन पर केन्द्रित 'झूठा-सच (यशपाल), 'तमस' (भीष्म साहनी), 'छाको की वापसी' (बदी उज्जमा) जैसे महत्वपूर्ण उपन्यास हिन्दी में हैं। आप कहानी के पाठ्यक्रमों के इस माड्यूल में एम.एच.डी.-12 (भारतीय कहानी) के अन्तर्गत विभाजन की व्यर्थता पर लिखी गई सर्वकालिक महान कहानी 'टोबा टेक सिंह' (सआदत हसन मण्टो) भी पढ़ेंगे। आज इस बात से शायद ही किसी की असमति हो कि यह भारतीय उपमहाद्वीप की अब तक की सबसे बड़ी त्रासदी है।

स्वयं प्रकाश ने इस कहानी के लिए 'पार्टीशन' को विषयवस्तु के रूप में चुना है लेकिन इसकी परिधि में समकालीन समय है। विभाजन भारतीय इतिहास का एक तथ्य है। इस तथ्य से मुँह नहीं मोड़ा जा सकता। उस त्रासदी ने जो कुछ लील लिया, आज उसे वापस नहीं लाया जा सकता। इस पार, उस पार जो भी उजड़ गया, आज उसके मानसिक विस्थापन पर दुख ही व्यक्त किया जा सकता है। लेकिन क्या विभाजन 1947 के साथ ही बीत गया? स्वयं प्रकाश की यह कहानी इसी प्रश्न का उत्तर ढूँढती है।

संक्षेप में कहानी का कथ्य यह है कि कुर्बान भाई के नाम से सुपरिचित कथानायक का परिवार देश विभाजन में तबाह हो गया। किसी तरह जान बचाकर उन्होंने टौंक में जीवन यापन शुरू किया। हिन्दू-मुसलमान के भेद के परे जाकर मनुष्यता का आचरण शुरू किया और उनके इस आचरण के नाते हिन्दू और मुसलमान की राजनीति करने वाले उन्हें नापसन्द करने लगे। इस प्रक्रिया में एक घटना के बाद वे पूरी तरह टूट गए। दो-चार लोगों के आलावा कोई उनके साथ खड़ा नहीं हुआ। यह सबके दुःख में साझीदार रहे कुर्बान भाई की आत्मा पर हमला था। कहानीकार ने अन्य संकेतों के बीच यह इशारा किया है कि विभाजन अब भी जारी है।

इस कहानी का आरंभ लेखक ने प्रश्न से किया है। लेकिन यह प्रश्न किसी एक के लिए नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे भारत की समूची आबादी को सम्बोधित करते हुए प्रश्न किया जा रहा हो। और इस प्रतीति का कारण यह है कि जो कहा जा रहा है, उसमें सबके हिस्से का सच है। कहानी में लेखक जैसे ही पूछता है - 'आप कुर्बान भाई को नहीं जानते?' वैसे ही कहानी में एक रोचकता (जिसे आकर्षण भी कह सकते हैं) पैदा हो जाती है। पाठक रूक जाता है और लेखक कुर्बान भाई के परिचय का एक हिस्सा बताता है - 'आप कुर्बान भाई को नहीं जानते? कुर्बान भाई इस क़स्बे के सबसे शानदार शख़्स हैं। क़स्बे का दिन है आज़ाद चौक और ऐन आज़ाद चौक पर कुर्बान भाई की छोटी सी किराने की दुकान है। यहां हर समय सफ़ेद क़मीज-पजामा पहने दो-दो चार-चार आने का सौदा-सुलफ़ मांगती बच्चों-बड़ों की भीड़ में घिरे कुर्बान भाई आपको नज़र आ जाएंगे। भीड़ नहीं होगी तो उकडूं बैठे कुछ लिखते होंगे। बार बार मोटे फ्रेम के चश्मे को उंगली से ऊपर चढ़ाते और माथे पर बिखरे आवारा, अधकचरे बालों को दाएं या बाएं हाथ की उंगलियों में फंसा पीछे सहेजते। यदि आप यहां से सौदा लेना चाहें तो आपका स्वागत है। सबसे वाजिब दाम और सबसे ज़्यादा सही तौल और शुद्ध चीज़। जिस चीज़ से उन्हें खुद तसल्ली नहीं होगी, कभी नहीं बेचेंगे। कभी धोखे से दुकान में आ भी गई तो चाहे पड़ी-पड़ी सड़ जाए, आपको साफ़ मना कर देंगे। मिर्च? आपके लायक़ नहीं है। रंग मिली हुई आ गई है। तेल? मज़ेदार नहीं है। रेपसीड मिला है। दीया-बत्ती के लिए चाहें तो ले जाएं।

यही वजह है कि एक बार जो यहां से सामान ले जाता है, दूसरी बार और कहीं नहीं जाता। यों चारों तरफ़ बड़ी-बड़ी दुकानें हैं-सिंधियों की, मारवाड़ियों की, पर कुर्बान भाई का मतलब है, ईमानदारी। कुर्बान भाई का मतलब है, उधार की सुविधा और भरोसा।'

एक बारगी यह लग सकता है कि एक व्यक्ति का परिचय बताने के लिए लम्बी-चौड़ी भूमिका की क्या आवश्यकता! लेकिन आवश्यकता है। पूरी कहानी कुर्बान भाई के चरित्र और हमारी स्वीकृति सामाजिक-सांस्कृतिक बनावट के इर्द-गिर्द घूमती है। यदि आप कुर्बान भाई के व्यक्तित्व के किसी पहलू से अनभिज्ञ रह गए तो यक़ीनन इस कहानी का मंतव्य आप तक नहीं पहुँचेगा।

कुर्बान भाई शायर भी हैं लेकिन इस पक्ष पर बात करने से पहले थोड़ा उनका अतीत देख लेते हैं। यह जरूरी तो नहीं कि वर्तमान को समझने के लिए अतीत को समझना आवश्यक ही हो लेकिन इस कहानी में जरूरी है। लेखक ने कथानायक कुर्बान भाई का अतीत इस प्रकार वर्णित किया है -'कुर्बान भाई के पिता का अजमेर में रंग का लंबा-चौड़ा कारोबार था। दो बड़े-बड़े मकान थे। हवेलियां कहना चाहिए। नया बाज़ार में खूब बड़ी दुकान थी। बारह नौकर थे। घर में बग्घी तो थी ही, एक 'बेबी ऑस्टिन' भी थी जो 'सैर' पर जाने के काम आती थी। संयुक्त परिवार था। पिता मौलाना आज़ाद के शैदाइयों में से थे। बड़े-बड़े लीडर और शायर घर आकर ठहरते थे। कुर्बान भाई उस वक़्त अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में पढ़ रहे थे। न भविष्य की चिंता थी न बुढ़ापे का डर! मज़े से ज़िंदगी गुज़र रही थी। इश्क, शायरी, होस्टल, ख़्वाब!

तभी पार्टीशन हो गया दंगे हो गए। दुकान जला दी गई रिश्तेदार पाकिस्तान भाग गए, दो भाई कत्ल कर दिए गए। पिता ने सदमे से खटिया पकड़ ली और मर गए। नौकर घर की पूंजी लेकर भाग गए। बचे-खुचों को लेकर अपनी जान लिए-लिए कुर्बान भाई नागौर चले गए वहां से मेड़ता, मेड़ता में टौंक। कहां जाएं? कहां सिर छिपाएं? क्या

पाकिस्तान चले जाएं? नहीं गए। क्योंकि जोश नहीं गए, क्योंकि सुरैया नहीं गई, क्योंकि कुर्बान को अच्छे लगने वाले बहुत से लोग नहीं गए। तो कुबान भाई क्यों जाते।'

यानि कि कुर्बान भाई ने 'पाकिस्तान' को अपना वतन नहीं माना। उन्होंने उस देश में रहना स्वीकार किया जिसकी धूल-मिट्टी में खेलकर वे जवान हुए थे। विभाजन के दंगों में दो जवान भाई मार दिए गए लेकिन वतन का प्रेम इस दुःख पर भारी है। कुर्बान भाई जिन लोगों को प्यार करते थे उनमें से अधिकतर यहीं थे फिर वे इस महान मुल्क को छोड़कर क्यों जाते! हालांकि यहाँ रूकने की 'और सारी वजहें' समाप्त हो चली थीं। लेखक ने उनके अतीत और वर्तमान को इन शब्दों में मिलाया है - 'धीरे-धीरे घर की बिकने लायक चीज़ें सब बिक गईं और कहीं कोई काम, कोई नौकरी नहीं मिली, जो उस दौर में मुसलमानों को मिलना बेहद मुश्किल थी। तिस पर हुनर कोई जानते नहीं थे, तालीम अधूरी थी। आख़िर एक सेठ के यहां हिसाब लिखने का काम करने लगे, लेकिन अपनी आदर्शवादिता, ईमानदारी, दयानतदारी, शराफ़त आदि दुर्गुणों के कारण जल्द ही निकाल दिए गए.....। लेकिन मालिक होने का ठसका एक बार टूटा तो टूटता चला गया। स्थिति यह थी कि हिंदुओं में निभने की कोशिश करते तो शक-शुबहे की बर्छियों से छेद-छेद दिए जाते और मुसलमानों में खपने की कोशिश करते तो लीगियों के धार्मिक उन्माद का जवाब देते-देते टूक-टूक हो जाते। ....उतरते गए ....मज़दूरी तक, हम्माली तक छुपपुट कारीगरी तक ......इंसानियत तक। नए-नए काम सीखे। मजबूरी सिखा ही देती है। साइकिल के पंचर जोड़े, पीपों-कनस्तरों की झालन लगाई, ताले-छतरियां, लालटेनें ठीक कीं........चूनरी-बंधेज की रंगाई में काम किया.....हाथी दांत की चूड़ियां काटीं........शहर दर शहर.......अब हमला सांप्रदायिक उन्माद का नहीं, मशीन का हो रहा था.....जो चींज़ पकड़ते.........धीरे-धीरे हाथ से फिसलने लगती। धक्के खाते-खाते पता नहीं कब कैसे यहां इस क़स्बे में आ गए और एक बुजुर्ग नमाज़ी मुसलमान से पचास रुपए उधार लेकर एक दिन यह दुकान खेल बैठे।'

इस वर्णन में दो-तीन बातें नोट करने की हैं। पहली एक अमीर व्यक्ति से कुर्बान भाई का एक मजदूर में बदल जाना।

दूसरी, हमारी स्वीकृत व्यवस्था में ईमानदार और शरीफ आदमी के लिए लगभग जगह नहीं है।

तीसरी, उम्मीद का दामन नहीं छोड़ना चाहिए।

विभाजन ने कुर्बान भाई और उन जैसे लाखों हिन्दुओं और मुसलमानों को बेघर कर दिया। जो पड़ोसी थे वे एक दूसरे को अविश्वास और संदेह से देखने लगे। खूब हत्याएं हुईं और स्त्रियों पर तरह-तरह के प्रहार हुए। यह आज भी एक तथ्य है कि विभाजन से 'आम लोगों' को यातनाएं ही मिलीं। किसी-किसी का तो सब कुछ लुट गया। और विभाजन के बाद जो हुआ उसे फैज़ अहमद फैज़ के शब्दों में कहें तो -

'ये दाग-दाग उजाला, ये शब-गजीदा सहर
वो इंतजार था जिसका, ये वो सहर तो नहीं।'

निश्चित रूप से इस महादेश के आम लोगों को एक ऐसी सुबह की उम्मीद थी, जिसमें स्वाधीनता की खुशबू हो। वे ऐसी आजादी की प्रतीक्षा में न थे जो अपने ही निर्दोष लोगों के खून से लथपथ हो। लेकिन हुआ यही। इस काहनी के 'नायक' कुर्बान भाई जो अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में इश्क, शायरी, होस्टल और ख्वाब में डूबे थे, मुल्क के बंटवारे ने उनका सब कुछ छीन लिया। लेकिन इस कहानी में महत्वपूर्ण यह है कि इन

घटनाओं ने उन्हें चोट तो दी लेकिन उनकी आत्मा और उनकी सोच को विषाक्त न कर सके। उस छोटे से कस्बे में उनकी छोटी-सी दुकान रोशनी की एक बड़ी खिड़की बन गई। रोशनख्याल लोग वहाँ एकत्रित होने लगे। उनके साथ रिश्ता रखना धीरे-धीरे लोगों के लिए प्रतिष्ठा का विषय बनने लगा। लेखक ने संकेत किया है कि 'आहिस्ता-आहिस्ता कुर्बान भाई की दुकान पढ़े-लिखों का अड्डा बन गई। और ऐसा होता भी क्यों न? लेखक के शब्दों में ही पढ़ लीजिए -'लोगों ने देखा, यह शख़्स कभी झूठ नहीं बोलता......ठगी-चार सौ बीसी नहीं करता..... कम नहीं तौलता....अबे-तबे नहीं करता..... गंदे मज़ाक नहीं करता.......अदब से बोलता है और आड़े वक़्त पर हरेक के काम आता है...हर काम में इसके एक नफ़ासत...सांस्कारिकता छलकती है.....इसलिए धीरे-धीरे क़स्बे में प्रतिष्ठित लोग दुआ-सलाम करने लगे...व्यापारियों के यहां शादी-ब्याह के कुछ होता...उनके कार्ड आने लगे। आकर्षित होकर खग के पास खग भी आने लगे। अब कुर्बान भाई उन्हें चाय पिला रहे हैं और ग्राहकी छोड़कर ग़ालिब पर बहस कर रहे हैं।'

लेखक ने विस्तार से कुर्बान भाई के जीवन के इस प्रसंग की चर्चा की है। इस संदर्भ में दिए गए लेखक के सूक्ष्म विवरण बड़े काम के हैं। वे कहानी की दिशा तय करते हैं। समाज को बेहतर बनाने का स्वप्न मनुष्य को किस कदर तरो-ताजा कर देता है, कुर्बान भाई का व्यक्तित्व इस बात का प्रमाण है। यह दुनिया यदि आज भी सुंदर लगती है तो ऐसे ही स्वप्नधर्मियों की वजह से।

लेखक ने कुर्बान भाई के व्यक्तित्व का वर्णन करने के बाद उन संदर्भों को खोलने की कोशिश की है, जो इस कहानी को मोड़ प्रदान करते हैं। कुर्बान भाई की व्यस्तता उनके समुदाय के लोगों को अखरने लगी। हिन्दूवादियों को भी अखरने लगी। यह प्रसंग इस बात का संकेतक है कि समाज की एक बड़ी आबादी इस कदर मोतियाबिंद से प्रभावित है कि उसे उजाला अब अच्छा ही नहीं लगता। आइए कहानी के इस प्रसंग को देखते हैं -'जिस परिमाण में कुर्बान भाई का जो समय हमें मिलता, उसी परिमाण में वह उनके पुराने दोस्तों-लतीफ़ साहब, हाजी साहब, इमाम साहब वग़ैरह के हिस्से से कम हो जाता। नमाज़ पढ़ने वे सिर्फ़ शक्रुवार को जाते थे, अब वह भी बंद कर दिया। वाज़ वग़ैरह में चलने को कोई पहले भी उनसे नहीं कहता था, अब भी नहीं कहता। मदरसे को पहले भी चंदा देते थे, अब भी देते हैं। हां, कभी-कभी होने वाली राजनीतिक सभाओं में जाने को और क़स्बे की राजनीति में दिलचस्पी लेने को उनके लिए खतरनाक समझकर बिरादरी वाले उन्हें टोकने ज़रूर लगे। पॉलिटिक्स अपने लोगों के लिए नहीं है, समझे? चुपचाप सालन-रोटी खाओ और अल्लाह का नाम लो। चैन से जीना है तो इन लफ़ड़ों में मत पड़ो। बेकार कभी धर लिए जाओगे....हमें भी फंसवाओगे। अब यहां रहना ही है तो ...पानी में रहकर मगरमच्छों को मुंह चिढ़ाने से क्या फ़ायदा? लेकिन अपनी मस्ती में मस्त थे हम लोग। न हमें पता चला न खुद कुर्बान भाई को कि उन्हें इमामबाड़े वाले ही नहीं, शाखा वाले भी घूरते हुए निकलने लगे हैं।'

देशप्रेम जीवन का बड़ा मूल्य है। कुर्बान भाई देशप्रेमी व्यक्ति हैं लेकिन धर्म केन्द्रित राजनीति करने वाले उन देश प्रेमियों को पसन्द नहीं कर पाते जो लकीर के फकीर नहीं होते। कुबाई भाई धर्म और जाति के सभी बंधनों को भुलाकर सबसे प्रेम करते हैं। उनके प्रेम में स्वाभाविक निश्छलता है। ऊपर दिए गए उद्धरण में अल्पसंख्यक होने का बोध है तो एक प्रकार की निराशा का भी स्वर है। आखिर अल्पसंख्यकों को राजनीति में दिलचस्पी क्यों नहीं लेनी चाहिए! अपने आप यह तय कर लेना कि राजनीति सिर्फ बहुसंख्यकों के लिए है, एक प्रकार के पूर्व निश्चित भय को संकेतित करता है। संभव है, ऐसा कुछ अनुभवों के आधारों पर हुआ हो लेकिन इस स्थायी भाव की तरह प्रस्तुत करना

धर्म की राजनीति को भले बल प्रदान करता हो, इस देश के अल्पसंख्यकों को निराशा की ओर ढकेलता है। नहीं भूलना चाहिए कि स्वतंत्र भारत में अल्पसंख्यकों को भी बहुसंख्यकों की तरह प्रभावशाली पद मिलते रहे हैं। और यह भारतीय जनतंत्र का एक सुखद पक्ष है।

इस कहानी में कुर्बान भाई की अग्रगामिता लोगों को (जिनमें दोनों पक्षों के लोग शामिल हैं) इस कदर नागवार गुजरती है कि एक दिन वह घटना घटती है, जो विभाजन की सतत प्रक्रिया का उद्‌घाटन करती है। होता यह है कि एक गाड़ीवान अपनी गाड़ी को उनके चबूतरे पर खड़ा कर देता है। इस स्थिति में कुर्बान भाई की दुकान छिप जाती है। वे गाड़ीवान से गाड़ी को किनारे लगाने को आग्रह करते हैं लेकिन वह अनसुना कर देता है। हारकर वे खुद गाड़ी को किनारे करने की कोशिश करते हैं तो गाड़ी वाला उनका अपमान करता है। इस प्रसंग को कहानीकार के ही शब्दों में देखना उचित होगा-'कुर्बान भाई ने उससे गाड़ी ज़रा बाजू में खड़ी करने और बैलों को किनारे बांध देने को कहा। उसने अनसुनी कर दी। कुर्बान भाई ने फिर कहा तो एक नज़र उन्हें देखकर अपने रास्ते चल पड़ा। कुर्बान भाई ने खुद उठकर चबूतरे पर टिके उसकी गाड़ी के अगले छोर को उठाया और गाड़ी को धकाकर...........लेकिन तभी उस आदमी ने कुर्बान भाई का चश्मा नोच लिया और धक्का-मुक्की करने लगा। ठीक इसी समय कोर्ट से लौटते वकील ऊखचंद उधर से गुज़रे और उन्होंने आवाज़ मारकर पूछा, 'क्या हुआ रे गोम्या?' गोम्या बोला, 'म्हनै कूटै!' यानी मुझे मार रहा है। वकील ऊखचंद ने पूछा, 'कौन?' गोम्या बोला, 'ये मींयों!'

कुर्बान भाई सन्न रह गए। बात समझ में आते-आते भीतर हचमचा गए। आंखें के आगे तारे नाचने लगे। वहीं ज़मीन पर उकड़ूं बैठ गए और सिर पकड़ लिया। अंधेरे का एक ठोस गोला कलेजे से उठा और हलक़ में आकर फंस गया। बरसों से जीम रुलाई एक साथ फूट पड़ने की ज़ोर मारने लगी।

.......यह क्या हुआ? ....कैसे हुआ? क्या गोम्या उन्हें जानता नहीं? एक ही मिनट में वह 'कुर्बान भाई; से 'मियां' कैसे बन गए? एक मिनट भी नहीं लगा! बरसों से तिल-तिल मरकर जो प्रतिष्ठा उन्होंने बनाई....हर दिन हर पल जैसे एक अग्नि-परीक्षा से गुज़रकर, जो सम्मान, जो प्यार अर्जित किया......हर दिन खुद को समझाकर ....कि पाकिस्तान जाकर भी कोई नवाबी नहीं मिल जाती.......जैसे हैं यहीं मस्त हैं.....अल्लाह सब देखता है. ....जाने दो जोश को, डूबने दो सुरैया का सितारा...भुला देने दो दोस्तों को.....लुट जाने दो कारोबार को..झूठे बदमाशों के क़ब्ज़े में चली जाने दो हवेलियां....गुमनाम पड़ी रहने दो भाईयों की क़ब्रें दफ़ना दो भरे-पूरे घर का सपना ..शायद कभी फिर अपना भी दिन आए. ...तब तक सब्र कर लो...क्या-क्या क़ीमत रोज़ चुकाकर क़स्बे में थोड़ा सा अपनापन ...थोड़ी सी सामाजिक सुरक्षा.... थोड़ा सा आत्मविश्वास....थोड़ी सी सहजता उन्होंने अर्जित की थी. ..और कितनी बड़ी दौलत समझ रहे थे इसको....और लो! तिल-तिल करे बना पहाड़ एक फूंक में उड़ गया! एक जाहिल आदमी....लेकिन जाहिल वो है या मैं? मैं एक मिनिट-भर में 'कुर्बान भाई' से 'मियां' हो जाऊंगा, यह कभी सोचा क्यों नहीं?'

यह पूरा प्रसंग सांस्कृतिक स्खलन का प्रसंग है। भारतीय संस्कृति, एकता और समरसता की संस्कृति है। कहानी में गाड़ीवान भारतीयता का प्रतीक नहीं है। वह समूचे बहुसंख्यक वर्ग का भी प्रतीक नहीं है लेकिन वह उस मानसिकता का प्रतीक है जो धार्मिक विभाजन को सबसे बड़ा मूल्य मान लेती हैं। वह धर्म की उस मूल प्रस्तावना को भी भूल जाती है जिसके अनुसार धर्म बंधन का नहीं, मुक्ति का साधन है। यह विडम्बना है कि पूरी दुनिया में धर्म की पीठ और आत्मा पर जड़ता का बोझ है। इस कहानी में कुर्बान भाई आहत हैं,

(एक सींमा तक भयभीत भी) इसलिए उनकी प्रतिक्रिया में विचलन है। इसे स्वाभाविक माना जा सकता है लेकिन यह प्रतिक्रिया संयत और वैचारिक होती तो कहानी के प्राणतत्व में वृद्धि करती। यह संभव नहीं कि कुर्बान भाई को पाकिस्तान गए मुसलमानों की हक़ीकत का पता न हो। यहाँ 'मीयों' शब्द यदि एक खास किस्म का व्यंग्यार्थ लिए है तो पाकिस्तान में 'मोहाजिर' शब्द भी कुछ इसी तरह का भाव-बोध धारण किए है। इसलिए समस्या का निदान यह नहीं है कि 'हम यहाँ हैं तो क्या हैं, हम वहाँ होते तो क्या होते! जैसे संवाद गढ़े जाएं। इस समस्या का निदान यह है कि इस भारतीयता का संधान किया जाए जिसमें 'भारतीयता' और 'धार्मिक अस्मिता' परस्पर विरोधी की तरह न दिखें। इसके लिए आचारण का मनोविज्ञान भी बदलना होगा।

स्वयं प्रकाश की इस कहानी में कुर्बान भाई की भीतरी टूटन का संकेत है। लेखक दिखाना चाहता है कि 1947 के देश विभाजन, भाइयो की हत्या और परिवार के बिखराव ने कुर्बान भाई को उतना नहीं तोड़ा था जितना इस घटना और इसके बाद के घटनाक्रमों ने तोड़ा। समाज, थाना और सत्ता, सभी ने कुर्बान भाई को निराश किया। वे उदास और निराश हो गए। उन्होंने अपनी दुकान पर बौद्धिक-सांस्कृतिक क्रियाकलापों को बंद कर दिया। शायद उन्हें लगा होगा कि ऐसे काम करने से क्या फायदा जो लोगों की दिमागी जहालत को थोड़ा भी कम न कर पाएं। हालांकि इन क्रियाकलापों के बंद होने का पूरा-पूरा दोष सिर्फ कुर्बान भाई पर नहीं डाला जा सकता। इनके बंद होने के पीछे उन लोगों की भी भूमिका थी जो पहले बिना नागा कुर्बान भाई की दुकान पर इक्कट्ठा होते थे। कहानीकार ने कहानी का सांकेतिक अंत किया है। यह अंश सीधे कहानी से लेते हैं-'बात बस यह बची है कि कई दिन बाद जब एक दोपहर मैं आज़ाद चौक से गुज़र रहा था-जिसका नाम अब संजय चौक कर दिया गया था-और वह शुक्रवार का दिन था-मैंने देखा कि कुर्बान भाई की दुकान के सामने लतीफ़ भाई खड़े हैं....। और कुर्बान भाई दुकान में ताला लगा रहे हैं।.... और उन्होंने टोपी पहन रखी है.....और फिर दोनों मस्जिद की तरफ़ चल दिए है।'

इसके ठीक पहले का अंश इस प्रकार है - 'एक दिन जब मैं पहुँचा, मेरी तरफ़ उनकी पीठ थी, किसी से कह रहे थे-आप क्या ख़ाक हिस्ट्री पढ़ाते हैं? कह रहे हैं पार्टीशन हुआ था! हुआ था नहीं, हो रहा है, जारी है.... और मुझे देखते ही चुप होकर काम में लग गए।'

कहानीकार ने अपनी ओर से स्वयं ही कहा है कि कहानी का अंत अच्छा नहीं है। यहाँ इस कथन की भी व्याख्या होनी चाहिए। निश्चित तौर पर इस कहानी का अंत करने के लिए लेखक ने किसी आदर्श का आश्रय नहीं लिया है। अमूमन इन संदर्भों में जिस तरह की प्रतिक्रियाए होती हैं, लेखक ने उसी को आधार बनाया है। कुर्बान भाई के आचरण में आया परिवर्तन कोई अस्वाभाविक घटना नहीं है। इस तरह की घटनाएं पूरी दुनिया में अल्पसंख्यक समुदायों के बीच घटती रहती हैं। इस प्रक्रिया में साधारण आदमी अपनी सुरक्षा ढूँढता है और नेतृत्व का आकांक्षी सत्ता का मार्ग। शायद इस प्रक्रिया में कुर्बान भाई ने सुरक्षा के साथ-साथ अपने घायल दिल का मरहम भी ढूँढा हो। लेकिन कुर्बान भाई की जिस बौद्धिक और सांस्कृतिक-चेतना का संकेत कहानी में है, वह पाठक को थोड़ा अचरज में डालता है। कुर्बान भाई जैसे चरित्र से इस तरह के समर्पण की उम्मीद नहीं की जाती। यह समर्पण इस तरह से सपनों की मृत्यु है।

वैसे आज यह एक सच्चाई है कि विभाजन निरंतर जारी है। इसे सिर्फ धार्मिक विभाजन तक देखना एक सीमित संसार निर्मित करना है। आज एक तरफ हमारे समाज में धर्म और जातियों के बीच विभाजन गहरा होता जा रहा है तो दूसरी ओर साम्राज्यवाद धनी और गरीब के बीच के विभाजन को बढ़ाता जा रहा है। ऐसा लगने लगा है जैसे विभाजन

एक स्थाई प्रक्रिया है। जहाँ तक इस कहानी का प्रश्न है, यदि कुर्बान भाई अपनी स्वाभाविक उदारता के साथ अपनी लड़ाई जारी रखते और 'नेरेटर' तथा उसके साथी डँटकर हर प्रकार की मूर्खताओं के विरुद्ध खड़े होकर लड़ते तो दुनिया बदलती या न बदलती, यह यकीन तो बना रहता कि दुनिया बदलने का स्वप्न पालने वाले बड़ी से बड़ी मुसीबत से टकरा जाते हैं। यह कहानी अपनी संभावनाओं में जितनी बड़ी थी, दरअसल अपनी प्रस्तुति में उतनी बड़ी बन नहीं पाई है। कभी-कभी तो यह कहानी कम, संस्मरण अधिक जान पड़ती है। इस कहानी में कहानी का अंत करने की एक हड़बड़ी भी दिखाई देती है।

17.4 'पार्टीशन' की भाषा और शैली

जैसा कि कहा गया, इस कहानी में कहानी का अंत करने की एक हड़बड़ी भी दिखाई देती है। अब इसे इस कहानी की कमजोरी भी कहा जा सकता है और यदि वह स्वीकार करें कि अतिरिक्त ब्यौरों के अभाव में यह कहानी अधिक सघन है तो इस अंत को सांकेतिक मानकर महत्वपूर्ण भी कहा जा सकता है। दरअसल कहानी के अंत का निर्धारण कथावस्तु के भीतर से ही तय होता है। यदि अंत पूर्व निर्धारित हो तो कहानी यांत्रिक और आभाहीन हो जाती है। जहाँ तक 'पार्टीशन' का प्रश्न है तो इस कहानी का अंत पूर्वनिर्धारित नहीं लगता। हालांकि संस्मरणात्मक शैली (जिसमें कि यह कहानी लिखी गई है) में लिखी गई कहानियों में इसका खतरा बना रहता है।

स्वयं प्रकाश की यह बहुचर्चित कहानी अतीत और वर्तमान के बीच निरंतर आवाजाही करती है और इसी आवाजाही में अपना मंतव्य भी बताती चलती है। यह इसके शिल्प की विशेषता है। संस्मरणात्मक शैली में होने के कारण इसमें अतिरिक्त आत्मीयता का वास है। इस कहानी की भाषा सहज, सरल और कथ्य को सम्प्रेषित करने वाली है। इसमें असरदार मुहावरों का प्रयोग किया गया है। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि इस कहानी में मुहावरे नया अर्थ तलाशते दिखाई देते हैं। इस कहानी में एक स्थल पर 'नेरेटर' जब कुर्बान भाई के बारे में कहता है, वे घुट रहे थे और घुल रहे थे... पर खुल नहीं रहे थे तो एक साथ कुर्बान भाई की व्यक्तिगत, सामाजिक और सांस्कृतिक मनोदशा को अभिव्यक्त कर रहा होता है। निश्चित रूप से भाषा और शैली की दृष्टि से स्वयं प्रकाश की यह कहानी एक प्रभावशाली कहानी है। इसमें भी कोई दो मत नहीं कि यह कहानी एक सघन सांस्कृतिक समीक्षा है। इस कहानी को पढ़ते हुए केदारनाथ सिंह की प्रसिद्ध कविता 'सन् 47 को याद करते हुए' बरबस याद आती है। केदार जी की वह कविता इस प्रकार है–

तुम्हें नूर मियाँ की याद है केदारनाथ सिंह?
गेहुँए नूर मियाँ
ठिगने नूर मियाँ
रामगढ़ बाज़ार से सुर्मा बेचकर
सबसे अखीर में लौटने वाले नूर मियाँ
क्या तुम्हें कुछ भी याद है केदारनाथ सिंह?

तुम्हें याद है मदरसा
इमली का पेड़
इमामबाड़ा
तुम्हें याद है श्शुरू से अखीर तक

उन्नीस का पहाड़ा
क्या तुम अपनी भूली हुई स्लेट पर
जोड़–घटा कर
यह निकाल सकते हो
कि एक दिन अचानक तुम्हारी बस्ती को छोड़कर
क्यों चले गये थे नूर मियाँ?
क्या तुम्हें पता है
इस समय वे कहाँ हैं
ढाका
या मुल्तान में?
क्या तुम बता सकते हो
हर साल कितने पत्ते गिरते हैं
पाकिस्तान में?
तुम चुप क्यों हो केदारनाथ सिंह?
क्या तुम्हारा गणित कमजोर है?

हम जिस कालखण्ड में हैं, उसमें जरूरी हो गया है कि प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति स्वयं से वह प्रश्न जरूर पूछे जो केदारनाथ सिंह ने अपनी इस कविता में स्वयं से पूछा है। इस तरह के प्रश्न आँखों में बचे पानी, आत्मा में बची तरलता और जीवन में बची शर्म के संकेतक होते हैं।

17.5 सारांश

इस इकाई में आपने प्रख्यात कथाकार स्वयं प्रकाश की बहुचर्चित और महत्वपूर्ण कहानी 'पार्टीशन' का अध्ययन किया है। यह कहानी कुर्बान भाई जैसे चरित्र के माध्यम से वास्तविक भारतीयता की खोज करने का उद्यम करती है। यह कहानी सहिष्णुता के तत्व (जो कि भारतीय समाज का मूलभूत गुण है) पर हो रहे कुठाराघातों को चिह्नित करते हुए संवेदनशील लोगों को सचेत भी करती है। इस कहानी की एक विशेषता यह भी है कि यह किसी एक पक्ष में झुकी हुई नहीं है। एक आदर्श संतुलन इसकी बनावट का हिस्सा है। इसमें भरपूर कथारस है और इसकी भाषा अपनी अंतर्वस्तु का निर्वहन करने में पूर्णतः सक्षम है। इस कहानी के अध्ययन के पश्चात अब आप एक कथाकार के रूप में स्वयं प्रकाश से भली-भाँति परिचित हो चुके होंगे।

17.6 अभ्यास

1. 'पार्टीशन' की कथावस्तु का विश्लेषण कीजिए।
2. 'कुर्बान भाई' के चरित्र की विशेषताओं को उद्घाटित कीजिए।
3. 'पार्टीशन' कहानी 'वास्तविक भारतीयता के संधान की एक कोशिश है'- इस कथन की समीक्षा कीजिए।

इकाई 18 स्विमिंग पूल : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 असग़र वजाहत : व्यक्तित्व एवं रचनात्मक योगदान

18.3 'स्विमिंग पूल' कहानी का कथ्य

18.4 'स्विमिंग पूल' कहानी का प्रतिपाद्य

18.5 'स्विमिंग पूल' कहानी की बुनावट और प्रस्तुति

18.6 सारांश

18.7 अभ्यास

18.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- रचनाकार असग़र वजाहत के व्यक्तित्व एवं रचनात्मक योगदान से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी;
- 'स्विमिंग पूल' कहानी का मर्म समझ सकेंगे/सकेंगी;
- इस कहानी में व्यंजित यथार्थ की तलाश कर सकेंगे/सकेंगी;
- इस कहानी की बुनावट और प्रस्तुति पर अपना ख्याल बना सकेंगे/सकेंगी;
- एक सशक्त रचनाकार की सशक्त कहानी को उसके कतिपय आयामों के साथ आत्मसात कर सकेंगे/सकेंगी और उसकी व्याख्या कर सकेंगे/सकेंगी।

18.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हम हिंदी के महत्वपूर्ण रचनाकार असग़र वजाहत की कहानी 'स्विमिंग पूल' का अध्ययन करने जा रहे हैं। किसी कहानी को पढ़ने के अनेक तरीके हो सकते हैं। एक तो यह कि कहानी उठाई और एक साँस में पढ़ डाली। तो आप भी पहले ऐसा ही कीजिए। कहानी उठाए और पढ़ जाइए। यानी कहानी का वाचन कीजिए। कई सवाल आपके मन में उठेंगे, कई शंकाएँ कुलकुलाएगीं, कई पक्ष अनुत्तरित रह जाएँगे और कई छूट भी जाएँगे। आप इन्हें एक जगह नोट कर लें। इसके बाद एक सजग विद्यार्थी के रूप में आप इस इकाई को पढ़ना शुरू करें और जरूरत पड़ने पर इस कहानी को एक बार फिर पढ़ें। इकाई में लिखे विभिन्न आयामों का मिलान कहानी से करें। कहानी आपके सामने खुलने लगेगी और आप कहानी में व्यंजित यथार्थ को समझने लगेंगे। यह कहानी जितना कहती है उससे ज्यादा व्यंजित करती है। इस कहानी की व्याख्या की अपार संभावनाएँ हैं और आप युग के संदर्भ में और आसपास के परिवेश के मद्देनजर इस कहानी का आकलन और मूल्यांकन कीजिए।

18.2 असग़र वजाहत : व्यक्तित्व एवं रचनात्मक योगदान

कहानी पढ़ने से पहले कहानीकार से परिचय हो जाए तो अच्छा क्योंकि इससे कहानीकार का व्यक्तित्व और रचना दृष्टि, कहानी की बनावट समझने में मदद मिलती है।

अगर कहें कि असग़र वजाहत एक संजीदा रचनाकार हैं जो भावुकता से नहीं बल्कि जीवनानुभव से कथा रचते हैं, अतः उनकी कहानियों में भावुकता कम जीवन की सच्चाइयों से रूबरू होने की गुंजाइश ज्यादा होती है तो अनुचित न होगा। असग़र वजाहत की कहानियाँ सनसनीखेज नहीं होती सहजता से कहा सच सनसनी जरूर फैला देता है जो आतंक में परिवर्तित होने जैसा है। इसीलिए जब उन्होंने अपनी एक कहानी 'धर्मयुग' पत्रिका में छपने के लिए भेजी तो संपादक धर्मवीर भारती ने यह कहकर लौटा दी कि इस कहानी में सौंदर्यबोध तथा सुंगध का अभाव है। ये बातें असग़र ने आसिफ फारूकी को साक्षात्कार देते हुए बताई थी। जब उन्होंने पूछा कि आपने कथा रचना की ओर रूख कैसा किया तो असग़र ने बताया कि अपना अनुभव सबसे साझा करने के लिए उन्होंने पहले उर्दू कहानियाँ लिखनी शुरू कीं पर फिर अपने दोस्तों और खासतौर पर अपने वरिष्ठ मित्र और सलाहकार कुंवरपाल सिंह की सलाह पर उन्होंने हिंदी में लिखना शुरू किया। वस्तुतः कुंवरपाल सिंह ने उनके जीवन को एक दिशा दी और उनके लेखक बनने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

एक रचनाकार का जीवन किसी किस्से से कम दिलचस्प नहीं होता। गोया असग़र का जीवन भी कम दिलचस्प नहीं। असग़र के पिता हरेक भारतीय पिता की तरह उन्हें डॉक्टर, इंजीनियर और कुछ नहीं तो विज्ञान की पढ़ाई कराना चाहते थे सो हुआ भी। पिता के अरमानों को सिर पर उठाए असग़र ने रसायन शास्त्र में स्नातक उपाधि की परीक्षा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण की। पर दिल नहीं लगा उनका विज्ञान की पढ़ाई में, वे तो फिल्मों में जाने का इरादा रखते थे, बतौर लेखक। उनके साथी थे मुजफ्फर अली। उनके साथ मिलकर वे कथा कार्यशालाओं, साहित्यिक गोष्ठियों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में शिरकत किया करते। किसी तरह दूसरे प्रयास में बी.एस.सी. की पगबाधा दौड़ पूरी की। मुजफ्फर अली तो फिल्म लाइन में चले गए असग़र वहीं छूट गए। तभी उन्होंने एक कहानी लिखी 'वो बिक गई।' यह असग़र की पहली कहानी थी। उर्दू में लिखी गई थी जो अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की विश्वविद्यालय पत्रिका में छपी। उनकी इसी प्रतिभा को देखकर ही कुंवरपाल सिंह ने उन्हें हिंदी में लिखने की सलाह दी। असग़र ने उनकी सलाह मानी और फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा।

5 जुलाई 1946 को उत्तर प्रदेश के फतेहपुर शहर में असग़र वजाहत का जन्म हुआ। पढ़ाई की सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते जब वे बी.एस.सी. कर गए तो उनके सामने रोजगार की समस्या खड़ी हुई क्योंकि एक कड़वी सच्चाई यह है कि भारत में कहानी लिखकर कोई जीवनयापन नहीं कर सकता और बी.एस.सी. के छात्र के लिए नौकरी के बहुत विकल्प नहीं थे तो इस दौरान फिर से कुंवरपाल सिंह उनकी मदद के लिए सामने आए और फिर उनकी सलाह से असग़र ने हिंदी में एम.ए. किया और फिर जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से डॉक्टर की उपाधि ग्रहण की। 1971 में उन्होंने जामिया मिल्लिया इस्लामिया में बतौर शिक्षक अध्यापन का कार्य शुरू किया। गौरतलब है कि असग़र को शिक्षक बनना कभी पसंद न था बस रोजी-रोटी के लिए उन्होंने मजबूरन यह पेशा अपनाया वरन उनका दिल और मिजाज तो लेखन और खासकर फिल्मों के लिए पटकथा लेखन के लिए बना था और अवसर मिलने पर उन्होंने पटकथाएँ लिखीं भीं। 'बूँद-बूँद'

उनके द्वारा लिखित प्रमुख और प्रसिद्ध टेलीविजन धारावाहिक है। इसके अलावा उन्होंने उर्दू ग़ज़ल की विकास यात्रा पर एक डॉक्यूमेंट्री भी तैयार की। कभी पैसों के लिए पत्रकारिता की थी पर जब जीवन में स्थिरता आई तो वे अपनी पसंद के आलेख लिखने लगे, रिर्पोटिंग की और 'हंस' (भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य) और 'वर्तमान साहित्य' (प्रवासी साहित्य) जैसी प्रसिद्ध हिंदी पत्रिकाओं के अतिथि संपादक भी रहे।

असग़र ने कई नाटक भी लिखे जिसमें उनका नाटक 'जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याई नहीं' ने अपार प्रसिद्धि हासिल की। सर्वप्रथम हबीब तनवीर ने 1989 में इसका मंचन किया जिसमें हबीब तनवीर और असग़र वजाहत दोनों की साख दाँव पर थी। पर इसे अपार सफलता मिली। इसके बाद कराची, लाहौर, सिडनी, न्यूयार्क और दुबई में भी इसका सफल मंचन हुआ।

असग़र की कहानियों का कई विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। असग़र वजाहत ने देश-विदेश की यात्राएँ की हैं। विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में उन्होंने पोलैंड में पढ़ाया। इसके अलावा ईरान की यात्रा की और उस पर लिखा भी है।

असग़र वजाहत के लेखन को सराहा गया, उसे पहचान मिली और कई पुरस्कार भी मिले। उन्हें हिंदी अकादमी ने सर्वश्रेष्ठ नाटककार के लिए 2009-10 में अकादमी पुरस्कार से नवाज़ा। उनके उपन्यास 'कैसी आगि लगाई' को कथा (यू.के.) द्वारा हाउस ऑफ लाड्र्स में अंतरराष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान से सम्मानित किया गया। इसके अलावा वनमाली पुरस्कार (2000), भुवनेश्वर नाट्य सम्मान (1995), संस्कृति पुरस्कार (1979), आचार्य निरंजननाथ पुरस्कार (2012) आदि से सम्मानित किया गया।

असग़र वजाहत का जन्म एक जमींदार परिवार में हुआ था पर असग़र ने यह लबादा कभी ओढ़ा नहीं और न ही इसे तवज्जोह दी। वे वामपंथ की ओर आकर्षित हुए और जनवादी लेखक संघ के अध्यक्ष भी चुने गए। उन्होंने अपनी रचनाओं के जरिए भारत की धर्मनिरपेक्ष ताकतों के हाथ मजबूत किए और कट्टरपंथियों को मुँह तोड़ जवाब दिया। उन्होंने अपने उपन्यास 'सात आसमान' में ढहते सामंतवाद का बड़ा मार्मिक और हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। यह असग़र के अपने परिवार और समाज की कथा लगती है। यहाँ असग़र कहीं भी 'नौस्टैलजिक' नहीं हुए हैं बल्कि बड़ी तटस्थता और निर्ममता से ढहते युग का चित्रण किया है। उनके द्वारा लिखित नाटक 'गोडसे @ गांधी.कॉम' भी काफी चर्चित है।

असग़र वजाहत मितव्वयी हैं - बोलने में भी और लिखने में भी। जो मितव्ययी होता है वह अपनी पूंजी संभल-संभल के और सोच-समझकर खर्च करता है। असग़र के पास अनुभव की अपार पूँजी है जिसे वे अपनी कहानियों, उपन्यासों, नाटकों, संस्मरणों में बड़े करीने से बाँट-बाँट कर खर्च करते हैं। इसलिए उनकी रचनाएँ कहीं भी, कभी भी बड़बोलेपन का शिकार नहीं होतीं। कई बार तो ऐसा लगता है कि कुछ कहते-कहते वे रूक गए और श्रोता/पाठक को ऐसा लगता है कि कहानी कुछ और कही जाए।

असग़र परंपरागत ढंग से कहानी नहीं सुनाते; वे छोटे-छोटे अनुभवों को बुनते हैं और ये अनुभव कहानी में विराट बनकर उभरते हैं। उनकी कहानियों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि हनुमान ने लघु रूप धारण किया और सुरसा के मुँह से निकलकर विराट रूप धारण कर लिया।

असग़र की कहानियों को पढ़कर तृप्ति की चाहत बनी रहती है और यही उनकी कहानियों की ताकत और खूबसूरती है। 'स्वीमिंग पूल' भी ऐसी ही कहानी है जिसमें

व्याख्या की अपार संभावनाएँ हैं और जिसमें इशारों ही इशारों में बड़ी-बड़ी बातें कह दी गई हैं।

'गोपन संभाषण' इनकी कहानियों की विशेषता है। असग़र 'कोड' में कहानियाँ कहने में माहिर हैं जिसे पाठकों को 'डिकोड' करना पड़ता है यानी कहानी के पाठ में यथार्थ की कई परतें और संभावनाएँ कुलबुलाती रहती हैं जिसे गोड़ाई करके ही पल्लवित पुष्पित किया जा सकता है।

18.3 'स्विमिंग पूल' कहानी का कथ्य

असग़र वजाहत की कहानियों को पढ़ना आसान है विश्लेषण करना मुश्किल क्योंकि उसकी बुनावट इतनी महीन होती है कि उधेड़ते वक्त कहीं रेशे न टूट जाएँ। अब इसी कहानी को लें। महज सवा पृष्ठ में सिमटी लगभग 1000 से भी कम शब्दों में कही कहानी जिसका कथ्य बस इतना है कि घर के पास एक नाला बहता है जिसे साफ कराने के लिए दम्पति एड़ी चोटी एक कर देते हैं पर उस पर कोई कार्रवाई नहीं होती और एक दिन नाले में सबकुछ बहता नजर आता है - यहाँ तक कि 'वी.आई.पी.' भी और तुर्रा यह कि वे उस बजबजाते नाले में प्रफुल्लित नजर आ रहे हैं। उस नाले में फूल भी बह रहे हैं; किताबें भी बह रही हैं, यानी सारी दुनिया उसी में समा गई है। नाला ही यथार्थ हो गया है और सबकुछ उसी में डूब गया है।

इस लिहाज से इस कहानी को दो फाँकों में बाँटकर विश्लेषित किया जा सकता है। यानी इसे समझने के लिए जो रणनीति हमने बनाई है वह यह कि पहले इस कहानी का सच समझ लिया जाए और फिर इस सच से जुड़े सवालों और सरोकारों पर बात कर ली जाए।

सबसे पहले युग का यथार्थ। यह कहानी आजाद भारत के सच की झलकी है। इस सच को असग़र वजाहत ने बज बजाते नाले के सच से जोड़कर रूपायित किया है जो 'स्विमिंग पूल' का भ्रम पैदा करने लगा है या फिर नाला ही लोगों को स्वीमिंग पूल लगने लगा है।

यह कहानी आजादी के बाद विकसित व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है। विद्रूपता पर कटाक्ष के रूप में भी इसे देखा जा सकता है। आजादी के बाद प्रदूषित कचरा विभिन्न रूपों में गंधा रहा है और इसे ही हम अपना सच मान रहे हैं। नाला भारतीय समाज, राजनीति, अर्थतंत्र और कुल मिलाकर पूरी व्यवस्था का प्रतीक है। इसके अलावा यह व्यवस्था बहरे, गूंगे और अंधे होने का भी सनद है। समाज में हर तरफ पैबस्त संवेदनहीनता को इस कहानी में लक्षित किया गया है। लक्षित ही नहीं किया गया है बल्कि इस पर प्रहार भी किया गया है पर बिलकुल 'असग़री' अंदाज में; देखने में छोटन लगे घाव करे गंभीर वाले अंदाज में।

इस देश का सारा तंत्र 'वी.आई.पी.' के इर्द-गिर्द घूमता है और हमारा लोकतंत्र 'वी.आई. पी. तंत्र' में तब्दील हो गया है। 'वी.आई.पी.' को केंद्र में रखकर असग़र ने इस कहानी को राजनीतिक व्यंग्य में तब्दील कर दिया है। सामंती मानसिकता का विरूपीकरण है आज का लोकतंत्र। जिसे लोकतंत्र बस इसलिए कह सकते हैं कि जनता से हर पाँच साल पर वोट दिलाने की नौटंकी की जाती है और 'वी.आई.पी' 'कॉमन मैन' (आम आदमी) तक पहुँचने का प्रहसन करते हैं और अब तो आम आदमी भी उन्हीं के रंग में रंगने लगा है। किसी भी लोकतंत्र में किसी का 'वी.आई.पी.' (वेरी इम्पोर्टेंट पर्सन; अति महत्वपूर्ण

व्यक्ति) होना ही लोकतंत्र पर प्रश्नचिह्न लगाता है। यदि लोकतंत्र लोक में आस्था का नाम है, यदि लोकतंत्र समानता के आधार पर टीका माना जाता है, यदि लोकतंत्र में लोक के हाथ में सत्ता है, शक्ति है तो ये 'वी.आई.पी.' कहाँ से उग आया। यही भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी विडंबना है जिसमें आम आदमी, कायदे से जिसके हाथ में सत्ता/ताकत होनी चाहिए, हाथ में कटोरा लेकर भीख माँगने की मुद्रा में 'वी.आई.पी.' के दर पर खड़ा है। 'वी.आई.पी.' आश्वासन देता है, वायदे करता है पर यथास्थिति को हटाना नहीं चाहता क्योंकि इसमें उसका हित है। यथास्थिति ततैये का छत्ता है जिसे जो भी छेड़ने की कोशिश करेगा, उसे ही काट खाएगा और इसे देख सब इठलै हैं। लोग कि बड़े चले थे छत्ता हटाने; देखा न अपना हाल। फिर वी.आई.पी. का मान तो इसी पर टिका है। अगर वह नाला साफ करवा देगा तो वह खुद समाप्त हो जाएगा क्योंकि वह तो इसी नाले की उपज है। नाले के कीड़े को नाले से निकालते ही उसके लिए सब समाप्त। उसने तो व्यवस्था ही ऐसी बनाई है कि नाला कभी साफ न होने पाए। हाँ, नाला साफ करने-करवाने का भ्रम हमेशा बना रहे। भ्रम का कोहरा, धुंध जितना घना होगा, 'वी. आई.पी.' की पकड़ उतनी ही मजबूत होगी। इसीलिए नाला साफ करने की कहीं सुनवाई नहीं होती; हाँ आश्वासन जरूर मिलता है। और हम आश्वासन से ही आश्वस्त भी हो जाते हैं; कम से कम किसी ने बात सुनी तो, आश्वासन दिया तो। आश्वासनों के सहारे खड़ा समाज गंदे नाले की तरह बजबजाने लगा है जिसमें सबको मजा आने लगा है सब इसके अभ्यस्त हो गए हैं।

हमारा तंत्र 'व्यक्ति केंद्रित' व्यवस्था में तब्दील हो गया है। राजनीति से लेकर के हर महकमे में व्यक्ति की पूजा होती है, व्यवस्था नाम का अस्तित्व लगभग समाप्त हो चुका है। पर यह भी छलावा है। जिसके पास सत्ता है वह सबको भुलावे में रखना चाहता है ताकि उसकी सत्ता लंबे समय तक टिकी रहे।

18.4 'स्विमिंग पूल' कहानी का प्रतिपाद्य

आइए, अब कहानी के उत्तरार्द्ध पर नजर डालें। असग़र ने अपनी कहानी के माध्यम से आगाह किया है कि 'वी.आई.पी.' का सच अब ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं। भ्रमजाल जल्द ही टूटेगा। जनता जागेगी और जब उसका सच से सामना होगा तो कुर्सी तो हिलेगी ही, व्यवस्था तो बदलेगी ही।

'स्विमिंग पूल' में परंपरागत ढर्रे का कोई नायक नहीं कोई खलनायक नहीं। समय और युग ही इस कहानी के पात्र भी हैं, परिवेश भी हैं, प्रतिपाद्य भी है, कथ्य भी है। इसलिए असग़र की कहानियों को कहानी के परंपरागत मानदंडों से नहीं माप सकते। वहाँ तो परंपरा से कुछ गृहीत है ही नहीं। सबकुछ समकालीन समय और युग से अभिप्रेरित और संचालित है।

कहानी के पूर्वार्ध में जहाँ जहालत का जिक्र है वहीं कहानी का उत्तरार्ध और अंत उस सच का पर्दाफाश करता है जो धुंध के पीछे छिपा है। आश्वासनों और वादों का भ्रमजाल टूटते ही जो भयावह दृश्य सामने आता है वह किसी को भी सन्न कर सकता है। जिस 'वी.आई.पी.' पर देश का पूरा दारोमदार है वह नाला साफ कराने के बदले नाले में ही तैर रहा है मानो स्विमिंग पूल में तैर रहा हो। यह सच किसी को भी हतप्रभ कर सकता है। यह सच सपनों के टूटने का सच नहीं है बल्कि पाले हुए भ्रम का बिखरना है। कहानी का अंतिम अंश पढ़ें और फिर गौर करें।

''एक दिन जब मैं आफिस से लौटकर आया तो पत्नी ने बताया कि उन्होंने नाले में बहुत-से फूल बहते देखे हैं। मैंने कहा ''किसी ने फेंके होंगे।''

इस घटना के दो-चार दिन बाद पत्नी ने बताया कि उन्होंने नाले में किताबें बहती देखीं हैं। यह सुनकर मैं डर गया। लगा शयद पत्नी का दिमाग हिल गया है, लेकिन पत्नी नॉर्मल थीं।

फिर तो पत्नी ही नहीं, मोहल्ले के और लोग भी नाले में तरह-तरह की चीज़ें बहती देखने लगे। किसी दिन जड़ से उखड़े पेड़, किसी दिन चिड़ियों के घोंसले, किसी दिन टूटी हुई भाहनाई?।

एक दिन देर से रात गए घर आया तो पत्नी बहुत घबराई हुई लग रही थीं। बोलीं ''आज मैंने वी.आई.पी. को नाले में तैरते देखा था। वे बहुत खुश लग रहे थे। नाले में डुबकियाँ लगा रहे थे। हँस रहे थे। किलकारियाँ मार रहे थे। उछल-कूद रहे थे, जैसा लोग स्विमिंग पूल में करते हैं!''

पहले नाले में फूल बहता देखा गया। कोई बात नहीं। नाले में उपयोग किए गए फूल तो फेंक ही दिए जाते हैं। हालांकि फूल का नाले में फेंका जाना न तो पर्यावरण की दृष्टि से उचित है न संवेदना के स्तर पर। नाले में फूल का फेंका जाना सांस्कृतिक गिरावट की पहली निशानी है। यह खतरे की घंटी थी जो अनसुनी रह गई। ''किसी ने फेंके होंगे'' जैसे जुमले आने वाली आफत को टालने जैसा है। हम अपने आसपास जब कूड़े का ढेर देखते हैं तो आँखें मूँद लेते हैं, सिर छुपा लेते हैं। सड़क पर गिरे किसी घायल को देखकर आँखें मूंद लेते हैं कि कहीं इसे अस्पताल न पहुँचाना पड़े। बस हमें किसी पचड़े में न फँसना पड़े और हम सुरक्षित रहें - यही भावना हम सबको संचालित कर रही है। इसके बाद यह हमारी आदत बनती जाती है और सड़क पर किसी पर होते अत्याचार से भी आँखें मूँदने लगते हैं। सांस्कृतिक गिरावट का यह विकट रोग है।

'आँखें बंद करना' अपने आप में एक संक्रामक रोग है जो गांधी जी के बंदरों का विकृत रूप है। यह आने वाले संकट के लिए रास्ता बनाता है। सांस्कृतिक अस्मिता संकट में पड़ती है; राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक अधःपतन का यह बीजवपन है। कुल मिलाकर राष्ट्र की अधोगति का आगाज़ है।

तो फिर क्या हुआ जो नाले में किताबें बहती दिखीं। जब भी किसी देश को रीढ़हीन बनाना हो तो सबसे पहले वहाँ के ज्ञान के स्रोत पर हमला होता है। बुद्धिजीवियों को कुंठित किया जाता है, डराया धमकाया, आतंकित किया जाता है, मारा जाता है, यंत्रणाएँ दी जाती हैं। अधिनायकवादी शासन सबसे पहले प्रतिरोध को दबाता है, और उन्हें किताबों से बड़ा डर लगता है। सनद रहे कि अधिनायक, सैनिक या तानाशाही शासन सबसे पहले किताबों का ही शिकार करता है क्योंकि उन्हें किताबों से डर लगता है। इसलिए शासक अपनी मनमर्जी की किताबें बनवाता है और पूरे देश को अपने रंग में रंगता है। सबसे पहले वह उन किताबों को नष्ट करता है जो उनकी नीतियों के अनुरूप नहीं होतीं। कट्टरपंथी और सांप्रदायिक ताकतें भी किताबों से बहुत डरती हैं; इसलिए वे प्रतिरोधी किताबों को नाले में बहा देती हैं और अपनी किताबें बनाती हैं। किताबों का बहना उस सांस्कृतिक अवमूल्यन की ओर भी इशारा करता है जिसमें हम अपनी परंपरा, अपने ज्ञान, अपनी भाषा, मूल्य आदि की तिलांजलि दे पश्चिमी सभ्यता द्वारा आरोपित ज्ञान सूचना आदि जो मीडिया के मार्फ़त हमारे जेहन में रोपी जा रही हैं को तरजीह देते हैं। किताबों को मार्ग से हटाकर टेलीविजन पर ऐसे मनोरंजन पेश किए जाते हैं जो हमारा दिमाग कुंद करते

हैं। हमारी सर्जनात्मकता तिल-तिल कर मृत होती जाती है। हम इतने संवेदनहीन होते जाते हैं कि किताबों के बहने का जिक्र करने वालों को सनकी मान लेते हैं क्योंकि सच से भागना हमारी आदत में शुमार हो गया है। अब हम सच का सामना करने के लिए भी तैयार नहीं हैं। सांस्कृतिक आक्रमण हमारे ऊपर इस कदर हुआ है कि अब हम भी उनकी ही भाषा बोलने लगे हैं जो हम पर काबिज हो रहे हैं। यानी जब कोई राष्ट्र, कौम, संस्कृति, दूसरे राष्ट्र, कौम और संस्कृति पर काबिज होना चाहती हैं तो पहले पराजित कौम की किताबें नाले में बहाई जाती हैं। अस्तु, नाले में किताबों का बहना राष्ट्र पर फैल रहे गुलामी के संकट की खतरे की घंटी है।

कहानी का अंतिम दृश्य आतंक पैदा करता है, सिहरन पैदा करता है। मुक्तिबोध के 'अंधेरे में' कविता में जो विस्तार से कहा गया है वह इस कहानी में अपनी लघुता में संपूर्णता के साथ उपस्थित है। पर आतंक वही पैदा होता है जो 'अंधेरे में' पढ़ने से होता है। कहानी का अंतिम अंश पढ़ें जो इसकी तसदीक करता है :

जब मूल्यहीनता ही समाज का, राष्ट्र का मूल्य बन जाए तो समाज और राष्ट्र भी गंदे नाले-सा बजबजाने लगे है और उसी में सबको आनंद भी आने लगे 'स्विमिंग पूल' में तैरने का तो समझ लें हम गुलाम हो चुके। कानून के रक्षक, संविधान के निर्माता और खैरख्वाह ही जब सभी प्रकार के अपराधों में संलग्न हों तो चौंकना और डरना लाजिमी है। संसद में बैठने के हकदार 'वी.आई.पी.' जब खुद सीधे-सीधे आरोपी बन रहे हैं तो ऐसा ही लगेगा न कि गंदे नाले में आनंद ले रहे हैं। गंदे नाले में जन्म लेने वाले कीड़ों के मानिंद हो गए हैं ये 'वी.आई.पी.' जो आप तो नरक में डूब ही रहे हैं पूरे देश और समाज को भी डुबा दे रहे हैं।

अधोपतन की इस कहानी को पढ़ते वक्त 'शतरंज के खिलाड़ी' और 'राग दरबारी' की भी याद आती है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में राजा के बंदी बना लिए जाने के बावजूद जनता खामोश है। 'राग दरबारी' में कुछ भी सामान्य नहीं है; अराजकता चारों ओर है। 'स्विमिंग पूल' में उन सब स्थितियों से पार हमारा राष्ट्र, हमारा समाज, राष्ट्र के निर्माता सब नाले में तब्दील हो गए हैं। सब कुछ नाले में बहते देखा जा सकता है। 'वी.आई.पी.' इस नाले में खुश हैं; तो फिर क्या बचा है? आओ, हम भी मिलकर नाले की स्तुति करें; गुणगान करें और नालामय हो जाएँ।

पर ऐसा नहीं कहानी में नाले में सबकुछ बहता दिखाया है; जनता अभी भी उस नाले को साफ करने के लिए कटिबद्ध है। बस! भ्रम टूट रहा है कि कोई वी.आई.पी. आकर इस नाले को साफ कराएगा। वी.आई.पी. को नाले में बहते देख सारे भ्रम टूट जाते हैं, अचम्भा होता है, ठेस पहुँचती हैं, विश्वास को धक्का लगता है पर इस भ्रम का टूटना एक ऐसा मोड़ है जिसके बाद जनता अपना रास्ता खुद तय करती है; तब क्रांति आती है; समाज बदलता है। जब तक जनता की आँखों पर पट्टी बंधी होती है तब तक वह उम्मीद की टकटकी लगाए रखती है और यही उम्मीद की टकटकी यथास्थिति कायम रखती है। पर जैसे ही उम्मीद का बुलबुला फूटता है, अंदर से आक्रोश पैदा होता है यह कहानी आक्रोश पैदा होने के ठीक पहले की कहानी है। कहानी का कोई अंत नहीं, कोई इशारा नहीं, कोई बयान नहीं बस दृश्य हैं जिनके जरिए भविष्य का परिदृश्य साफ नजर आता है।

18.5 'स्विमिंग पूल' कहानी की बुनावट और प्रस्तुति

कहानी जितनी छोटी होती है, उतनी ही कसी हुई होती है, उसमें जितनी प्रतीकात्मकता होती है, उतनी ही ज्यादा व्यंजना होती है, उसमें जितनी बारीकी होती है, उतनी ही अंतर्निहितता होती है, उसमें जितना व्यंग्य होता है उतना ही पैनापन आता है, उसमें जितना कटाक्ष होता है, उतनी ही धार होती है और ऐसी ही कहानी है 'स्विमिंग पूल' बिलकुल प्रेमचंद के 'ठाकुर के कुआँ' की तरह। दोनों में ही ऊपरी नीरवता के भीतर एक गहरी उथल-पुथल है और इसमें इसके कहन और भाषा का विशेष योगदान है। प्रेमचंद की तरह असग़र वजाहत आम बोलचाल की भाषा का इस्तेमाल करते हैं जो कहानी के काम को बड़ी सरलता और सुगमता से आगे बढ़ाती है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि असग़र की कहानियाँ दृश्यों में विभाजित होती हैं। इसलिए उनकी कहानियों में विवरण या घटना बाहुल्य नहीं होता बल्कि कुछ दृश्य होते हैं जो पाठक दर्शक बनकर एक के बाद एक देखता जाता है। यह कहानी किसी फिल्म की स्क्रिप्ट की पूर्वपीठिका लगती है। यह कहानी किसी स्क्रिप्ट का आइडिया है जिस पर एक बड़ी फिल्म बनाई जा सकती है। सभी दृश्यों को कई 'शाट्स' में भी विभाजित किया जा सकता है।

'स्विमिंग पूल' में कहन कम है व्यंजना ज्यादा है।

कहानी का 'कथक' यानी 'कथावाचक' यानी 'सूत्रधार' यानी 'मैं' सीधे पाठक को संबोधित है जो इस कहानी को भारतीय कथा परंपरा से भी जोड़ती है। इस कहानी में 'कथन' और 'संवाद' का विशेष सहारा लिया गया है जो कहानी की नाटकीयता को तो बढ़ाता ही है इसे भारतीय कथा परंपरा से भी जोड़ता है जिसमें शुक शुकी संवाद के माध्यम से कथा कहने की कथानक रूढ़ि का इस्तेमाल किया जाता है।

कहानी की बुनावट हमारे देश के संकट और विकास के अंतर्विरोध को बड़े गहरे पैठकर व्यंजित करने में सफल हैं क्योंकि कहानी की भाषा में कोई आरोपण नहीं है। मसलन, ''यह सच है कि हमने घर के सामने वाले नाले की शिकायतें सैकड़ों बार दर्ज कराई हैं। लेकिन नाला साफ कभी नहीं हुआ।''

इसके पहले नाले का जो 'विवरण' कहानी में आया है वह भी गहरे व्यंग्य से संपृक्त है-

''यह कहकर पत्नी फिर 'उसके' बारे में शुरू हो गईं। मैं दिल ही दिल में सोचने लगा कि पत्नी पागल नहीं तो, हद दर्जे की बेवकूफ जरूर है जो इतने बड़े, महत्वपूर्ण और प्रभावशाली वी.आई.पी. से शिकायत भी कर रही है तो ये कि देखिए हमारे घर के सामने नाला बहता है, उसमें से बदबू आती है, उसमें सुअर लोटते हैं, उसमें आसपास वाले भी निगाह बचाकर गंदगी फेंक जाते हैं, नाले को कोई साफ नहीं करता। सैकड़ों बार शिकायतें दर्ज कराई जा चुकी हैं। एक बार तो किसी ने मरा हुआ इतना बड़ा चूहा फेंक दिया था। वह पानी में फूलकर आदमी के बच्चे जैसा लगने लगा था।''

यह 'वर्णन' कहानी का 'प्लॉट' का वह हिस्सा है जिसपर पूरी कहानी खड़ी है और धीरे-धीरे कहानी क्लाईमेक्स की ओर बढ़ती जाती है और अंत में वी.आई.पी. को नाले में बहता

दिखाकर कहानी को क्लाइमैक्स पर पहुँचाकर कहानीकार अपना हाथ खींच लेता है। पर कहानी का क्लाइमैक्स बरकरार रहता है और पाठक अचंभित हैरान, परेशान जैसा कि कहानी में आए दो पात्र दम्पत्ति।

असग़र चूंकि दृश्यों का निर्माण करते हैं इसलिए छोटे-छोटे वाक्य और उपवाक्य बनाते चलते हैं :

''किसी दिन जड़ से उखड़े पेड़।

किसी दिन चिड़ियों के घोसले।

किसी दिन टूटी हुई शहनाई।''

आगे देखिए :

> ''वे बहुत खुश लग रहे थे।
>
> नाले में डुबकियाँ लगा रहे थे।
>
> हँस रहे थे।
>
> किलकारियाँ मार रहे थे।
>
> उछल-कूद रहे थे, जैसे
>
> लोग स्विमिंग पूल में करते हैं।''

छोटे-छोटे दृश्यों से पूरा परिदृश्य खड़ा करने की यह कला असग़र की कहानी कला की विशेषता है।

18.6 सारांश

असग़र वजाहत ने उपन्यास, कहानी, नाटक, संस्मरण, टी.वी. एवं फिल्म लेखन के साथ-साथ चित्रकारी में भी महारथ हासिल की। इसलिए उनकी कहानियों में दृश्यात्मकता और चित्रात्मकता और नाटकीयता की प्रधानता मिलती है जो उनकी कहानियों को विशिष्ट बनाती है। 'स्विमिंग पूल' पढ़ते समय आपने इसे महसूस किया होगा। इन सब बिंदुओं को ध्यान में रखकर एक बार और कहानी पढ़िए, आनंद आएगा। असग़र की इस कहानी को पढ़ते वक्त अपने आसपास के माहौल और घटती घटनाओं को गौर करें आपको सारे 'वी.आई.पी.' नाले में डुबकियाँ लगाते मिलेंगे।

अंत में असग़र वजाहत के साहित्य संसार पर एक नजर :

उपन्यास : कैसी आगि लगाई, सात आसमान, बरखा रचाई, धरा अंकुआई

नाटक : इन्ना की आवाज, दुर्गति, सबसे सस्ता गोस्त, ओ जनमय ता ना, पाक नापाक, जिस लाहौर नइ देख्या वो जम्याई नही, गोड़से @ गांधी. कॉम।

कहानी संकलन : अंधेरे से, दिल्ली पहुँचना है, स्विमिंग पूल, सब कहा कुछ

संस्मरण : चलते तो अच्छा था, रास्ते की तलाश

18.7 अभ्यास

1. 'स्विमिंग पूल' कहानी में उद्भासित यथार्थ को स्पष्ट कीजिए।
2. समकालीन परिवेश के संदर्भ में 'स्विमिंग पूल' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
3. 'स्विमिंग पूल' कहानी की संरचना पर विचार कीजिए।
4. कहानीकार असग़र वजाहत के रचना संसार पर प्रकाश डालिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 19 बायोडाटा : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 लेखक का परिचय

19.3 'नब्बे का लम्बा दशक' और अखिलेश की कहानियाँ

19.4 'बायोडाटा' का कथानक

19.5 'मुक्ति', 'ऊसर', एवं 'बायोडाटा' की कथात्रयी

19.6 'बायोडाटा' को समझना

19.7 सारांश

19.8 अभ्यास

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप समकालीन हिंदी कहानी के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर अखिलेश के कथा साहित्य से परिचय प्राप्त करेंगे/करेगी। इनकी एक चर्चित कहानी 'बायोडाटा' आपके सामने है। इसके अध्ययन के पश्चात् आप :

- अखिलेश का संक्षिप्त जीवन परिचय प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी;
- सन् अस्सी के बाद से अब तक के कालखण्ड 'द लांग नाइन्टीज' या 'नब्बे का लम्बे दशक' के प्रति अपनी अवधारणा बना सकेंगे/सकेंगी;
- अखिलेश के कथा साहित्य एवं 'नब्बे के लम्बे दशक' के अन्तर्सम्बन्ध के बारे में जान सकेंगे/सकेंगी;
- इस कालखण्ड में युवा राजनीति के बदलते तापमान को 'मुक्ति', 'ऊसर' एवं 'बायोडाटा' की कथात्रयी के माध्यम से समझ सकेंगे/सकेंगी;
- युवा राजनीति के लम्पट तत्वों की बढ़ती भागीदारी को 'बायोडाटा' के माध्यम से गहराई से समझ सकेंगे/सकेंगी।

19.1 प्रस्तावना

सन् 80 के बाद सम्पूर्ण विश्व के फलक पर महत्वपूर्ण परिवर्तनों की शुरूआत होती है। भारत भी इस दौर में अपनी कथित सफलताओं, असफलताओं के साथ शामिल रहा है। इस दौर के बारे में हमारे समय के एक महत्वपूर्ण कवि एवं समाज शास्त्री बदरी नारायण कहते हैं-

1980 से 1990 तक का दशक जो 'दि लाँग नाइन्टीज' का निर्णायक कालखण्ड है, में विश्व मानवीय विकास में एक महत्वपूर्ण दुर्घटना होती है, वह है सोवियत रूस का पतन, प्रतिरोध एवं परिवर्तन के महान स्वप्न का भंग। इस घटना ने पूरी दुनिया को एक संशय और भय से भर दिया'

एक ध्रुवीय विश्व में बढ़ती अमेरिकी दखलंदाजी बाद के वर्षो में उत्तरोत्तर क्रूर एवं निर्लज्ज होती चली गई। यह जो 'द लांग नाइन्टीज' का कालखण्ड है उसकी व्याप्ति सन् 80 से लेकर हमारे समकालीन समय तक है। पहले हम इस पद के प्रति अपनी अवधारणा स्पष्ट कर लें। जब जक अन्य कोई उपयुक्त अनुवाद न मिल जाये इस पद को हम अपनी सुविधा के लिए 'नब्बे का लम्बा दशक' कहेंगे।

इस दौर में उदारीकरण के नाम पर विश्व की तमाम जनसंख्या को जिस राजमार्ग हांका गया उसमें से अधिकांश की स्थिति टोल टैक्स भरने की भी नहीं थी। साम्यवादी व्यवस्था के बरक्स अपने को साबित करने के लिए पूंजीवादी ने अब तक कल्याणकारी राज्य का सुरक्षा वाल्व लगा रखा था, उसकी भी असलियत सामने आने लगी। राष्ट्रीय सरकारों के लिए वैश्विक/व्यापारिक हित अधिक महत्वपूर्ण होने लगे। सार्वजनिक उपक्रमों का निजीकरण एवं समाजिक क्षेत्रों से राज्य का पलायन वस्तुतः एक ही सिक्के के दो पहलू है। ये कार्यक्रम तीसरी दुनिया के कई क्षेत्रों में लागू हुए जिसमें भारत भी सम्मिलित था। कहने को तो ये कार्यक्रम राष्ट्रीय सरकारों द्वारा चलाये जा रहे थे, किन्तु उनका परोक्ष नियंत्रण ऐसी विश्व संस्थाओं के हाथ में था, जो पूँजीवादी हित पोषण की अलमबरदार थी, एवं आम जनता की दुश्वारियां बढ़ रहीं थी। पेट्रोलियम स्त्रोतों पर कब्जा करने की अमेरिकी कोशिश इराक जैसे खुशहाल देश को बर्बाद करके भी थमती नजर नहीं आ रही, यह सिलसिला कहां तक जायेगा यह अभी कहा नहीं जा सकता। फिर जब यह मामला जलस्त्रोतों तक पहुंचेगा तब स्थिति कितनी भयावह होगी? हम सभी सुनते आ रहे हैं कि तीसरा विश्वयुद्ध जल स्त्रोतो पर कब्जे के लि़ए लड़ा जायेगा।

अब हम 'नब्बे के लम्बे दशक' के भारतीय संदर्भ पर कुछ बातें कर लें। इसी दौर में राम जन्म भूमि आंदोलन की शुरूआत होती है। 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस की जो घटना हुई उसने भारतीय समाज को एक बार फिर लगभग निर्णायक रूप से बांट दिया। 1947 में विभिन्न कारणों से द्वि राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को नकार कर भारत में ही बने रहने का निर्णय करने वाला मुस्लिम समुदाय अब गहरी चिंतन प्रक्रिया में था। सिलसिला यहीं रूका नहीं 2002 के गुजरात दंगों ने शासन की अनेक संस्थाओं की भूमिकाओं पर जो सवाल खडे किए वे बहुत खतरनाक थे। विडम्बना यह है कि यहीं गुजरात वैश्विक मानदण्डों पर विकास का माडल भी कहा जाने लगा है।

यही समय खासकर उत्तर भारत में दलित राजनीति के उभार का भी है। बद्री नारायण के अनुसार', 80-90 के दौर में ही भारतीय जनतांत्रिक राजनीति फ्रैक्चर्ड होती है, नये समाजवादी समूह भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण हो जाते है।'

शुरूआती संघर्षो के बाद जब ये समूह सत्ता की भागीदारी तक पहुंचते हैं, तब उनमें नयी दरार देखने को मिलती है। राजनीति अब जिस जोड़-तोड़ के गणित से परिचालित रही उसमें शुरूआती कटुतायें, ऐतिहासिक परिस्थितियां महत्वहीन हो गयी हैं। इस परिदृश्य में दलितों एवं वंचितों को उनका दाय मिला या नहीं यह प्रश्न गौण हो गया एवं इन्हीं वर्गो से उभरकर आये मध्यवर्ग ने हिस्सेदारी एवं भागीदारी के व्याकरण में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए ऐसे वर्गों से हाथ मिलाने में तनिक भी संकोच नहीं दिखाया जो ऐतिहासिक रूप से शोषकों में शामिल रहे हैं। जाहिर है इन सभी परिवर्तनों की एक अन्तर्क्रिया साहित्य से भी होती रही। यहां हमारा संबंध कहानी साहित्य से ही है अतः हम अपनी चर्चा कहानी तक ही सीमित रखेंगे।

कहानी को हमेशा आंदोलनों के माध्यम से समझने की रूढ़ि सन् 80 के बाद असफल होती दिखाई देने लगी। नई कहानी, साठोत्तरी कहानी, जनवादी कहानी इसके साथ ही

सचेतन एवं समानांतर कहानी जैसे घोषित आंदोलनों का अभ्यास सन् 80 के बाद की कहानी को समझने में सफल नहीं हो पा रहा था।

यहां तक कि इस उभार को कभी कभी अघोषित आंदोलन कहकर ही इसकी आंदोलन धर्मिता तलाश ली जाती थी।

वास्तव में हिंदी कहानी अब छद्म क्रांतिकारिता से मुक्ति की राह तलाश रहीं थी। उदय प्रकाश, अखिलेश और पंकज बिष्ट जैसे कथाकार अपनी प्रतिबद्धता से समझौता किए बगैर फार्म (रूप) एवं कंटेंट दोनो स्तरों पर नये-नये प्रयोग कर रहे थे। यह यथार्थ का विकसित रूप था। इसी दौर में विश्व पटल पर लातिन अमरीकी साहित्य को नयी पहचान मिली। जटिल यथार्थ एवं जादुई याथर्थवाद का सम्मेलन हिन्दी कहानी में उदय प्रकाश के माध्यम से देखने को मिला, इससे पहले भी रूसी एवं पश्चिमी साहित्य की अंतःक्रिया हिंदी कहानी से हो चुकी थी।

अखिलेश की कहानियां भी सन् 80 के दशक से ही चर्चा में आने लगती हैं। समकालीन परिवर्तनों पर एक बारीक नजर रखते हुए अखिलेश अपने कथा साहित्य में उनका पुनराख्यान या प्रत्याख्यान रचते हैं। अपनी कहानियों में अखिलेश समय एवं सत्य के अनछुए पहलुओं को गहारी सम्वेदना एवं कलात्मक चेतना के साथ बाहर लाते हैं।

'नब्बे के दशक' का भारतीय परिदृश्य अखिलेश की कहानियों में एक लगभग सम्पूर्ण आख्यान बन कर उभरता है। बाजारवाद, साम्प्रदायिकता, दलित प्रश्न, बेरोजगारी, शक्ति सम्बंध ये सभी विषय अखिलेश के यहां मौजूद है।

19.2 लेखक का परिचय

अखिलेश समकालीन कथा परिदृश्य के एक असंत महत्वपूर्ण कथाकार हैं। किसी भी रचनाकार का वास्तविक परिचय उसकी रचनाओं के माध्यम से ही होता है फिर भी हम अखिलेश का जीवन परिचय जानने की कोशिश करेंगे।

अखिलेश का जन्म 6 जुलाई 1960 को सुल्तानपुर जिले की कादीपुर तहसील में हुआ था। आरम्भिक शिक्षा कादीपुर और सुल्तानपुर जिला मुख्यालय में एवं उच्च शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हुई। ये सभी स्थानीयतायें अपने विशिष्ट तेवर के साथ, अखिलेश की कहानियों में, यथावसर रुपांतरित होती रहती हैं। सुल्तानपुर उत्तर प्रदेश के अवध अंचल में आता है इस हिसाब से अखिलेश की मातृभाषा अवधी हुई। अखिलेश की भाषा में अवधी का एक सूक्ष्म एवं आंतरिक आस्वाद हमेशा मिलता है, खासकर जब वे किसी कस्बाई चित्रण में मसरुफ़ हों।

अखिलेश के अब तक कुल चार कहानी संग्रह प्रकाशित हैं-

1. आदमी नहीं टूटता
2. मुक्ति
3. शापग्रस्त
4. अंधेरा

इसके अतिरिक्त दो उपन्यास 'अन्वेषण' और 'निर्वासन' एवं अपने तरह की अनूठी संस्मरणात्मक पुस्तक 'वह जो यथार्थ था' अखिलेश के खाते में दर्ज है।

'वह जो यथार्थ था' में अखिलेश अपने बचपन के कस्बे कादीपुर को याद कर रहे हैं। उत्तर आधुनिक विमर्श में विधाओं के जिस विलीनीकरण की बात की जा रही है, उसका उत्कृष्ट उदाहरण है यह पुस्तक।

अखिलेश की कहानियों के कुछ सूत्र यहां चहल कदमी करते हुए मिल जायेंगे, ग्रहण कहानी का कादिर दर्जी, मोर-मुरैले और मुन्नू सात तो बस एक उदाहरण हैं। इस पुस्तक के उत्तरांश में मैं और मेरा समय, अखिलेश की कई कहानियों को समझने की दृष्टि देता हैं।

इस समय अखिलेश 'तद्भव' पत्रिका का सम्पादन कर रहे हैं। इसे भी अखिलेश समकालीन साहित्यिक पत्रकारिता में अप्रतिम बना चुके हैं। उनकी सम्पादन यात्रा 'वर्तमान साहित्य' से शुरु हुई थी। इसके शुरुआती तीन अंकों का सम्पादन अखिलेश ने किया था। इसके बाद मित्र प्रकाशन इलाहाबाद की पत्रिका 'माया' में बतौर उपसम्पादक चार महीने तक काम किया, फिर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की पत्रिका 'अतएव' में उपसम्पादक रहे।

जाहिर है सम्पादन की इस यात्रा में अखिलेश के कुछ ऐसे स्वप्न ज़रुर रहे होंगे जो अधूरे रह गये। इन्हीं अधूरे स्वप्नों की परिपूर्त 'तद्भव' में हुई और खूब हुई।

अखिलेश को हिंदी में खुले दिल से स्वीकारा/उनको मिले पुरस्कारों की फेहरिस्त भी छोटी नहीं है। श्रीकांत वर्मा पुरस्कार, वनमाली पुरस्कार, परिमल पुरस्कार, इंदू शर्मा कथा सम्मान आदि उन्हें मिल चुके हैं। तद्भव के संपादन के लिए भी उन्हें अयोध्या प्रसाद खत्री सम्मान से सम्मानित किया जा चुका हैं।

19.3 'नब्बे का लम्बा दशक' और अखिलेश की कहानियाँ

हम प्रस्तावना में नब्बे के लम्बे दशक पर अपनी अवधारणा बना चुके हैं। सम्पूर्ण विश्व पटल पर इसकी चर्चा करते हुए हम भारतीय संदर्भ में इसकी विशिष्टता पर भी बातचीत कर चुके हैं। अब इस खण्ड में हम अखिलेश की कहानियों और 'नब्बे के लम्बे दशक' की अन्तक्रिया पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

भारतीय संदर्भ में यह कालखण्ड बाजारवादी शक्तियों के आगे राजसत्ता के निरीह समर्पण, राजनीतिक एवं कार्पोरेट भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, दलित राजनीति का उभार आदि सूचकों द्वारा पहचाना जा सकता है। अखिलेश बेहद संजीदगी के साथ इन प्रश्नों से टकराते हैं, किन्तु खासियत यह है कि इस पूरी प्रक्रिया में उनकी कहानी कहीं से भी ज्ञानगर्भित बोझिल नहीं लगती अपितु गम्भीरतर विषय भी उनकी कहानियों में बेहद पठनीय अनुभव बन जाता है।

'हाकिम कथा' अखिलेश की एक चर्चित कहानी है। एक नौकरशाह परिवार का औछापन एवं नीचता इस कहानी में पर्त दर पर्त उघड़ते चले जाते हैं। भ्रष्टाचार के इस उत्सव में मंत्री, ठेकेदार, दलाल सभी शामिल हैं, अवसर भले ही बेटी की शादी का है पर 'यह इमोशनल होने का टाइम नहीं डार्लिंग। इतना अच्छा टाइम है इसे एक्सप्लायेट करो।' इमोशनल होना बेवकूफी है। अवसरानुकूल व्यवहार करना लाजमी है आगे बढ़ने के लिए तभी तो 'दो साल में फैक्ट्री लग पायेगी।' इसे ही अर्थशास्त्री 'ग्रोथ अण्डर करप्शन' कहते हैं।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के राजनीतिक एवं कारपोरेट भ्रष्टाचार के सहमेल ने उसके ग्लैमर में एक अतिरिक्त चमक पैदा कर दिया है। अब युवाओं का प्रशासनिक सेवाओं के प्रति आकर्षण मुख्यतः इस तथ्य से भी परिचालित होता है कि इसमें भ्रष्टाचार की अपार एवं अकूत सम्भावनायें हैं। 'अगली सदी में प्यार का रिहर्सल' की नायिका दीपा की जीतेन्द्र में दिलचस्पी का कारण भी यही है। पिता राजनीतिज्ञ एवं पति आई0ए0एस0 इस भ्रष्ट समय में इस दुर्लभ मणिकांचन संयोग की सम्भावना दीपा को गुद-गुदा रही है। पिता तो बदले नहीं जा सकते इसलिए वह लागातार जीतेन्द्र के विकल्प पर भी विचार कर रहीं है। दुसरी ओर जीतेन्द्र भी नौकरी और ससुराल दोनों से पैसा कमाना चाह रहा है। यह उन युवाओं की प्राथमिकता है जो विश्वविद्यालय के जहीन छात्र है, निश्चित है कि ये प्राथमिकतायें एक दिन में नहीं बनी हैं, इसके पीछे हैं स्वातंत्र्योत्तर भारत के अर्धशताब्दिक वर्षों के अनुभव।

इसी सिलसिले में अखिलेश की एक अन्य कहानी 'शापग्रस्त' को देखना होगा। कथा नायक प्रमोद वर्मा लोक निर्माण विभाग में जूनियर इंजीनियर है, भ्रष्टाचार के आकंठ में डूबा हुआ भी है। घर परिवार सभी इस व्यवस्था में प्रसन्न है। किन्तु अखिलेश यहां प्रमोद वर्मा के माध्यम से उस सच्चाई का साक्षात्कार कराना चाहते हैं जो सामान्य आँखों से नहीं दिखाई देती। भ्रष्टाचार से संतृप्त प्रमोद वर्मा ऐसी स्थिति में आ गया है जहां उसकी सम्वेदनायें मर गयी है। वह अब न सुखी हो सकता है न दुखी। यही हमारे मध्यवर्ग की विडम्बना है यहां उपलब्धियों के लिए सम्वेदनाओं की बलि देना आवश्यक है।

सार्वजनिक जीवन में जो भ्रष्टाचार के शाहकार हमें दिखाई देते हैं उनकी परिस्थिति घरेलू वृत्त कितनी दारूण दुखद एवं अमानवीय होती है इसकी गवाही अखिलेश की ये कहानियां देती हैं।

'जलडमरूमध्य' कहानी में सहाय जी चिरैया कोट छोड़ कर अपने गांव लौटना चाहते हैं। जिस चिरैयाकोट में उनकी जान बसती थी। जहां उनका बड़ा पुराने स्थापत्य का मकान था, उसी चिरैयाकोट को छोड़ने का फैसला सहाय जी ने किया है। कई अटकलें है सहाय कि सहाय जी चिरैयाकोट क्यों छोड़ रहे हैं। सहाय जी के सबसे अजीज दोस्त मकबूल का अनुमान है, 'सहाय जी घबराहट की वजह से शहर से रूखसत हो रहे है। हां .... हां शहर में ताबड़तोड बन रहीं दुकानों से उनको घबडाहट होने लगी थी। उन्होंने मुझसे कई बार कहीं है यह बात कि इतनी दुकाने बनने से चिरैयाकोट बर्बाद हो जायेगा। सब जगह दुकाने ही दुकाने हो जायेगी तो बच्चे कहा खेलेंगे हम बूढ़े कहां सैर करेंगे।'

दुकाने यानी बाजार। बाजार मूलतः मनुष्यता विरोधी होता है। नफा नुकसान के जिस आधार पर बाजार का तंत्र चलता हैं वहां मानवता के लिए कोई अवकाश नहीं बचता।

कहानी के पाठ में उन कारणों की भी मौजूदगी है जो सहाय जी के अजीज दोस्त मकबूल मियां कह नहीं पाते या कहना नहीं चाहते। सहाय जी की पत्नी को दूसरी महत्वपूर्ण घटना चिरैयाकटोरा में भड़का हिंदू-मुस्लिम दंगा लगती थी। 'यह पहली ईद थी जिसमें सहाय जी मकबूल साहब के दस्तरख्वान पर नहीं बैठे थे और अपने मुसलमान दोस्तों के बच्चों को ईदी नहीं दे सके थे।'

लेकिन अखिलेश यहां कुछ निश्चयात्मक नहीं होते वे सहाय जी के निर्णय का आकलन उसके कारणों के विभिन्न रूपांतरणों के कोलाज के माध्यम से करते हैं- यदि गहराई से

सहाय जी की बुखार की अवधि की अनुभूतियों की छानबीन की जाय तो देखा जा सकता है उनके यहां दंगो, दुकानों, पुरखों तथा यातनापूर्ण दृश्यों का जो कोलाज बनता था, वह यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त था कि उनका मन चिरैया कोट से विरक्त हो गया है।

हम जिस 'नब्बे के लम्बे दशक' की बात करते आये हैं उसकी लगभग पूर्ण सूचना यहाँ मिलती है।

'वह जो यथार्थ था' अखिलेश की एक संस्मरणात्मक कृति है। इसके मैं और मेरा समय खण्ड में अखिलेश बाजार भर्त्सना करते हैं- ऐसे सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सिद्धफलदायी, सर्वसंचालक। तुम्हारी भर्त्सना करने के लिए मैं यहां उपस्थित हूँ।

बाजार की तलाश ही मानवता को उपनिवेशवाद की शोषक जकड़न तक ले गयी थी। इस समय बाजार एक बार फिर अपने शक्तिशाली अवतार में हमारे समक्ष प्रस्तुत है। परिष्कृत औजारों के साथ अखिलेश अपने कथा साहित्य में भी बाजार की पुरजोर भर्त्सना करते हैं। वजूद कहानी का अंतिम अंश हमारे सामने है, जयप्रकाश के देसी हुनर को बाजार अपने हित में इस्तेमाल करना चाहता है। आरम्भ में जयप्रकाश मानता है कि पैसा लेने से हुनर खत्म हो जाता है, किन्तु उसे विभिन्न पारिवारिक एवं सामाजिक दबावों के कारण बाजार के सम्मुख होना ही पड़ता है।

यहां बाजार एकाधिकारवाद, पेटेण्टीकरण, बौद्धिक सम्पदा आदि हथियारों से लैस है। प्रत्यक्षतः तो यहां जयप्रकाश की गरीबी दूर होती दीख रही है किन्तु बदले में उसे अपनी जिस देसी सामाजिक ज्ञान परम्परा से वंचित होना है उसके दुष्परिणाम दूरगामी है। बाजार की दुधारी तलवार उस ज्ञान के लाभों की एक निश्चित वर्ग तक तो सीमित कर ही देगी साथ-साथ अपने समुदाय से कट कर यह हुनर भी अपनी उर्वरा शक्ति खोकर अंततः नष्ट ही हो जायेगा। जय प्रकाश यहां अपनी संचित दुखद स्मृतियों की पूंजी के आधार पर इन सबसे मोर्चा लेता हैं। अखिलेश यहां एक वैज्ञानिक युक्ति का कलात्मक प्रयोग करते हैं। जय प्रकाश यहां एक प्रकार के स्वरलोप का शिकार होता है जिसे वैज्ञानिक भाषा में अफेसिया (चींपं) कहते है, किन्तु जय प्रकाश यहां एक सामाजिक स्वरलोप का शिकार है यहां विभिन्न सामाजिक कारणों से उसकी सोच एवं वाणी का तालमेल गड़बड़ा गया है, मुंह से इंकार का स्वर निकलता है और जब इस इंकार का तालमेल उसके कर्म से हुआ 'जयप्रकाश ने वैद महाराज की कुर्सी को धक्का दिया। वे गिर गये तो उनकी नाक पर घुटनो से मारा और वैद महाराज के चीखने से पहले वह खुद दर्द से चीखा।' यहां पर जयप्रकाश समकालीन बाजार के साथ-साथ उस शोषक परम्परा पर भी प्रहार करता है। जिसके कारण उसके पिता रामबदल को अपनी जान से हाथ धोना पडा था।

हम प्रस्तावना में ही कह चुके हैं कि भारतीय संदर्भ में नब्बे का लम्बा दशक साम्प्रदायिकता के गम्भीर उभार से भी मुब्तिला है। अखिलेश अपनी कहानी 'अंधेरा' में इस समस्या से एक गम्भीर मुठभेड़ करते हैं। इस कहानी में प्रेमरंजन और रेहाना की प्रेम कथा के माध्यम से हम साम्प्रदायिक समस्या की भी पर्तों से भी परिचित होते है। तकनीकि एवं साम्प्रदायिकता, दंगों के दौरान भारतीय पुलिस का एक पक्षीय व्यवहार आदि समीकरण कहानी के पाठ में अच्छी तरह से पहचाने जा सकते है।

कहानी की नायिका रेहाना हिंदू धर्म मिथकों आदि के बारे में अच्छी खासी जानकारी रखती है। उसकी यही जानकारी उसे दंगे के समय हिंदू साधू और उसके गुण्डों से

बचाती हैं। प्रेमरंजन इस जानकारी को अपने प्रेम की उपलब्धि मानता है। किन्तु वास्तविकता बहुत ही भयावह है-

'मैं ही नहीं कई मुसलमान हिंदुओं के बारे में जान रहे हैं। मुंबई के दंगों में मुसलमानों के कत्ल के बाद अपने मुसलमान होने की आइडेंटी छिपाने के लिए तुम्हारे मजहब की बाते सीखने लगे हैं .... पर गुजरात के दंगों के बाद मुल्क भर के मुसलमान बेचैन हुए. ....। तुम्हें हैरानी होगी लेकिन ये सच है रामायण, महाभारत की कथाओं की किताबें मेरे अब्बू ने मुझे पढ़ने के लिए दी। कहा था उस वक्त उन्होंने बेट़ी पढ़ लो बुरे वक्त में काम आ सकती है। और देखा तुमने प्रेम रंजन वह पढ़ना बुरे वक्त में काम आया रेहाना सिसकने लगी।

यहां दो संस्कृतियां जिस राजनीतिक धरातल पर मिल रहीं है। उसके निहितार्थ बहुत भयानक हो सकते है, दूसरे मजहब की बातें जानना अपने प्राण बचाने के लिए। दो धर्मों के बीच यह जो रिश्ता बन रहा हैं वह औपन्यासिक प्रसार की मांग करना है।

'नब्बे के लम्बे दशक' पर बात करते हुए बद्री नारायण जिस फ्रैक्चर्ड राजनीति की पहचान करवाते हैं अखिलेश की कहानी वहां भी पहँचती है। ग्रहण अखिलेश की एक महत्वपूर्ण कहानी है। यहां अखिलेश कथा नायक राजकुमार के माध्यम से सम्पूर्ण दलित जातीयता का स्वातंत्र्योत्तर इतिहास लिख देते है। दलित नेतृत्व किस प्रकार सता शीर्ष पर पहुंच कर वहीं व्यवहार करने लगता है जैसे उसके पूर्ववर्ती करते आये है, दलित राजनीति की इस विवादास्पद किन्तु खतरनाक सच्चाई पर भी अखिलेश ऊंगली रखते हैं। दलित राजकुमार का घृणित बदबूदार पेटहगना अस्तित्व दलित नेता बहन जी भी सहन नहीं कर पातीं एवं उसे अपने बंगले से बाहर करा देती है।

'ग्रहण' कहानी अपने शिल्प विधान में भी विशिष्ट है। इस कहानी से लोक कथाओं और मिथकों का एक महत्वपूर्ण संग्रथन हुआ है। जिससे यह लोककथात्मक अन्तर्पाठात्मकता का जबर्दस्त उदाहरण बन जाती है।

इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय संदर्भों में जिस कालखण्ड को हम 'नब्बे का लम्बा दशक' कहते हैं वह अखिलेश की कहानियों के पाठ संसार में प्रमुखता से दर्ज है।

19.4 'बायोडाटा' का कथानक

'बायोडाटा' राजदेव मिश्र की कहानी है। राजदेव मिश्र एक राजनीतिक पार्टी की युवा शाखा का जिलामंत्री है और अब प्रदेश अध्यक्ष मोती सिंह की कृपा से प्रदेश सचिव बनना चाहता है।

राजदेव मिश्र का राजनीति में प्रवेश एक पारिवारिक घटना/दुर्घटना के कारण हुआ है मतलब कि वह कोई ऐसा नेता नहीं है जो जनसंघर्षों की आचं में तप कर राजनीति की उपलब्धि हासिल करते है। ऐसे नेता तो पिछली पीढ़ी में पाये जाते थे। तो हुआ यों कि तेईस वर्ष का राजदेव अपनी नयी भाभी के प्रति आसक्त था। भाभी भी उसे जब तब देखकर मुस्करा देती थी राजदेव ने इसका गलत अर्थ निकाला और मौका देख कर उसकी गोद में ढुलक गया। भाभी अचकचा गयी तो बहाना बनाया मेरे सिर जुआं पड़ा है उसे खोज दो। भाभी ने तो उसे सिर्फ घृणा से धक्का भर दिया था। पर उसी शाम पिता उसे लाठी से मार रहे थे 'और जुआँ निकलवाओगे सरऊ।'

इस घटना के बाद राजदेव को प्रबोध हुआ कि कुछ बनकर दिखाना चाहिए। सबसे आसान है नेता बनना इसके साथ-साथ वह यह भी जानता था कि 'सुख की सर्वोतम मलाई राजनीति के दूध में ही पड़ती है।' राजनीति का पारस चोरी, तस्करी, व्याभिचार आदि कुधातुओं को भी सोना बना देती है।

सो राजदेव ने भी कुर्ता पैजामा पहनकर राजनीति शुरू कर दी और घोषणा की कि शादी मैं तभी करूंगा जब राजनीति में कम से कम जिला स्तर का कोई पद हथिया लूंगा। उम्र के छतीसवें तक आते-आते वह पार्टी की युवा शाखा का जिला मंत्री बन गया यह सुख की सर्वोत्तम मलाई तो नहीं थी लेकिन इस पड़ाव पर कुछ और दुश्वारियों ने उसे घेर लिया था जिसके कारण वह शादी की ओर उन्मुख हुआ, उसके बाल झड़ने लगे, दाँत पायरिया के घेरे में आ गये।

जब सावित्री उसके जीवन में वधू बन कर आयी तो उसे यकीन हो गया कि राजनीति में ढुनमुनिया खा रही उसकी किस्मत अब पलटकर सरपट धावक हो जायेगी।

छत्तीस वर्ष का अतृप्त कामुक राजदेव विवाह के बाद पत्नी प्रेम में इस कदर गिरफ्तार हो गया 'कि दोस्तो ने घोषणा कर दी, राजदेव की राजनीति बीवी के पेटीकोट में घुस गई। उन्हें विश्वास हो गया कि राजदेव की राजनीतिक मृत्यु हो चुकी है और वह जोरू की गुलामी से जीवन यापन करेगा।'

लेकिन राजदेव को एक दिन यह प्रबोध हो ही गया कि हम लोगों के लिए 'राजनीति जीवन संगिनी हैं और जीवन संगिनी रखैल, जो रखैल को जीवन संगिनी समझता है लक्ष्य सदैव उससे दूर रहता है।' इस इलहाम के बाद राजदेव पत्नी सावित्री की घोर उपेक्षा करने लगा। राजदेव ने पार्टी कार्यालय में जा कर बाकायदा घोषणा कर दी कि अब तक मैं भ्रमित था, अब मैं अपने घर वापस आ गया हूँ।

हम सभी जानते है कि जीव विज्ञान के अपने नियम होते है वे भावनाओं या अन्य प्रतिबंधों से नहीं परिचालित होते। अब भले ही राजदेव सावित्री के पास ऐसे आता था जैसे ट्रक ड्राइवर..... के पास। फिर भी सावित्री के गर्भ द्वार पर शिशु ने दस्तक दे दी। राजदेव अपनी आर्थिक सीमाओं को नितांत व्यावहारिकता का जामा पहनाते हुए सावित्री के पुत्र जन्म के लिए अपने माता पिता के पास भेजना चाहता है। पति प्रेम में गिरफ्तार सावित्री अपने सहज तर्कों से जब राजदेव की कूटनीति को निरूत्तर कर देती है तो वह झुंझला जाता है। गुस्से में उसे कुतिया तक कह डालता है। यह कहानी का सबसे मार्मिक प्रसंग है। 'सावित्री जब मैके कि लिए विदा हो रही थी तो वह सचमुच एक लाचार पिटी एवं थकी हारी कुतिया की तरह रो रही थी। बाहर रिक्शा खड़ा था और भीतर अपने कमरे में रो रही थी। राजदेव सोच रहा था, सावित्री अभी उससे लिपटकर फूट-फूट कर रोयेगी। पर उसने केवल अपना सिर पति के बाये कंधे पर रख दिया और कुतिया की तरह कूं कूं रोने लगी।'

इसी प्रसंग में राजदेव के चरित्र का कुछ भावुक मानवीय पक्ष भी उद्‌घाटित होता है, कहानी के पाठ में पहली और आखिरी बार वह सावित्री की अनुपस्थिति को भीतर तक महसूस करता है- 'वह अपने कमरे में घुसता तो सूना महसूस करता। हालांकि सब कुछ उसी तरह था, केवल एक बक्सा नहीं था पर लगता ऐसा था कि कमरे की छत कुछ नीचे खिसक आयी है और कोई एक दीवार कम हो गयी है। वह तकिए में मुंह छिपाकर लेट गया।'

अब वह राजनीति की जीवन संगिनी के साथ मस्त हो गया और अनवरत चमचागीरी में व्यस्त हो गया। तभी यह अवसर आया कि उसके जिले के मोती सिंह पार्टी की युवा शाखा के प्रदेश अध्यक्ष मनोनीत कर दिये गये और अब उसे प्रदेश सचिव बनवाने के लिए प्रलोभन दे रहे हैं जिसके लिए उसे दिल्ली जाना है मोती सिंह के साथ। 'साम दाम दण्ड भेद से सबकी लेड़ी तर' करने।

लेकिन सावित्री के पत्र ने भारी खलल पैदा कर दिया। सावित्री ने लिखा है- 'डाक्टर और बुजुर्ग जिस तरह मुंह बनाते हैं उसे देखकर लगता रहा है कहीं कुछ भारी गड़बड़ है। सो आप आइए जरूर । मेरी हार्दिक इच्छा है कि हमारी औलाद सबसे पहले अपने पिता अर्थात आपको देखे।' इस पत्र की घृणास्पद उपेक्षा राजदेव करता है, इसकी चिंदी-चिंदी करके उस पर पेशाब कर देता है, क्योंकि उसे दिल्ली जाना है मोती सिंह के साथ प्रदेश सचिव बनने।

फिर तार आता है 'कम सून'। तार चिठ्ठी की तरह बेसबूत नहीं किन्तु होता यहाँ भी राजदेव रास्ता निकाल ही लेता है। अपने एक चेले के हाथ सावित्री को खत भेजता है- 'कोई खुशखबरी ही भेजी होगी पर कहीं कोई गड़बड़ तो नहीं है, यह सोचते ही दिल कांप जाता है। इसीलिए यह पत्र एक विश्वासपात्र चेले के माध्यम से भिजवा रहा हूँ। . ... तुम्हारे ऊपर जान न्यौछावर करने वाला राजदेव।'

पत्र लिफाफे में बन्द करके चेले को दे दिया गया है इस हिदायत के साथ 'ये लेटर पहुंचा कर आराम से आना। मैं कल शहर में रहूंगा नहीं, परसों मिलना।' वास्तव में राजदेव को तो दिल्ली निकल जाना है अगले दिन दोपहर को, मोती सिंह के साथ।

अगले दिन '............. ट्रेन छूटने न पाये, इस चक्कर में वह पौन घण्टा पहले ही स्टेशन पर धमक गया था। वह मोती सिंह का इंतजार कर रहा था।' लेकिन मोती सिंह के आने के पहले ही वहीं टूटपुंजिया चेला आ धमका, जिसको राजदेव ने सावित्री के पास भेजा था। अबकी समाचार बहुत दुखद था, सावित्री एक असामान्य संतान की मां बन चुकी थी।

'वह अजीबो गरीब संतान थी। उसके मुंह से हमेशा चारो पहर, सोते जागते लार बहती थी'। वह लार में लिथडी संतान थी। जैसे उसके पेट में लार की टंकी हो - जब देखो तब लार बहती रहती।

वह पीली एवं दुर्बल थी। चिचुकी हुई। बहुत बासी तरोई की तरह। उसमें जीवन के चिह्म नहीं थे, जीवन गायब था। बस जीवन की परछाई थी। वह हंसती थी न रोती थी। हां कोई उसके हाथ छुए तो चिल्लाने लगती थी। हाथ में जीवन था पर हाथों की गति असहज थी उसको। वह गोरी गोरी और पिलपिली थी। लगता मृत्यु ने ढेर सारा बलगम थूका हो।'

तभी राजदेव को मोती सिंह आते दिखे। चेला अब भी जवाब चाह रहा था। राजदेव ने चेले को फिर सावित्री के पास भेज दिया इस हिदायत के साथ.....' कोई खास बात हो तो यहां और दिल्ली के पते पर तार कर देना फौरन।'' वास्तव में प्रदेश सचिव बनना उसके लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है, यह बात तब स्पष्ट हो जाती है जब वह मोती सिंह के साथ एसी डिब्बे में बैठा सोच रहा था। उसके हाथ में मोती सिंह का दिया एक संतरा है। यदि दुर्योगवश बीवी और बच्चा दोनों मर गये तो 'उसने निश्चय किया यदि ऐसा हुआ तो, अपने बायोडाटा में जोडेगाः पब्लिक की सेवा में -पार्टी की खिदमत में-गृहस्थी तबाह

हो गयी।। परिवार उजड़ गया। इस सम्बन्ध में टुटपुंजिया का तार मिला तो नत्थी कर देगा।'

19.5 'मुक्ति', 'ऊसर' एवं 'बायोडाटा' की कथात्रयी

अखिलेश की कहानियों की यह लघुत्रयी भारतीय युवा वर्ग एवं मुख्य धारा की राजनीति की अन्तक्रिया समझने में सहायक हो सकती हैं। सुभाष (मुक्ति), चंद्र प्रकाश श्रीवास्तव (ऊसर) और राजदेव मिश्र (बायोडाटा) ये तीनों नायक आपातकालोत्तर उत्तर भारतीय युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। समय की धुरी के विभिन्न बिन्दुओं पर स्थित होने के कारण इनमें भिन्नतायें भी है किन्तु एक अंतर्सूत्र इन्हें बांधे भी रखता है।

सबसे पहले मुक्ति के नायक सुभाष की बात करें। 'उम्र तेईस साल, कद पांच फुट नौ इंच, रंग गेंहुआ, पहचान चेहरे पर हल्की दाढ़ी।.......... बुराइयों की तुलना में अच्छाइयाँ कहीं ज्यादा।' लेकिन यही प्यारा सुभाष सताइस साल की उम्र तक काफी बदल जाता है-'इस समय उसकी उम्र सताइस साल, उद्देश्य नौकरी प्राप्त करना, जो जी तोड़ प्रयासों के बाद भी मिली नहीं।'

सुभाष जो छात्र जीवन में राजनीति में भी सक्रिय था मुख्यमंत्री के महाविद्यालय में प्रबंधकों के तमाम विरोध के बावजूद छात्र संघ बनाने में सफल हुआ था, अब वहीं सुभाष पब्लिसिटी आफिसर बनने की लिप्सा में विधायक जी की चाटुकारिता करने को मजबूर है। सुभाष को यह नौकरी नहीं मिलती है- कारण उसने जो बुकलेट मुख्यमंत्री के खिलाफ विस्फोटक आरोपों की तैयार करके छपवायी थी- उसी के कारण मंत्री खुलेआम उसकी मदद नहीं करना चाह रहे है। यह लॉबींग का नया मतलब है। विधायक जी आश्वासन देते हैं 'मिलते रहो। अभी तो तुम्हारा राजनीतिक जीवन शुरू हुआ है.........।' लेकिन सुभाष इस राजनीति में दूर तक नहीं चल पाता। वह पढ़ा लिखा है, दुनिया जहान की एक समझ उसके पास है। गलत बात पर वह गुस्सा होता है। सुभाष के बरक्स बायोडाटा के राजदेव और ऊसर के चंद्र प्रकाश को देंखें। राजनीति में दोनों का प्रवेश अकस्मात होता है कम से कम कहानी के पाठ से तो यही लगता है, किन्तु राजदेव और चंद्र प्रकाश जिस तरह प्राथमिकता के रूप में मुख्यधारा की राजनीति को स्वीकार कर लेते हैं एवं सहज हो जाते हैं उससे स्पष्ट है कि उन जैसों का एकमात्र विकल्प राजनीति ही है। फिर चाहे किसी साथी को पीटकर हवालात जाना हो या भाभी से जुंआ खोजवाने की छिछोरी हरकत के फलस्वरूप पड़ी मार हो ये तो सिर्फ घटनायें ही है जो कहानी के रूप बंधान को रोचक एवं पठनीय बनाती है, होना इन दोनों को राजनीति में ही था।

राजदेव के सामने स्पष्ट है 'सुख की सर्वोत्तम मलाई राजनीति के दूध में ही पड़ती हैं। दूसरी ओर चंद्र प्रकाश भी कुर्ता पैजामा पहनकर खुद को किसी नेता से कम नहीं समझता है।

'मुक्ति', 'ऊसर' और 'बायोडाटा' यही कालक्रम हैं इन कहानियों के प्रकाशित होने का। इस कालक्रम के आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। 'मुक्ति' कहानी संग्रह 1989 में प्रकाशित हुआ था। कहानी का प्रकाशन सोवियत विघटन से पहले हो चुका था। यानी प्रतिरोध एवं विकल्प की राजनीति का स्वप्न अभी मरा नहीं था, यद्यपि मुख्यधारा की राजनीति बहुत विपथित हो चुकी थी। यहीं नहीं 'पेरिस्त्रोइका' और 'ग्लासनोस्त' विमर्शों में सकारात्मक माने जा रहे थे। ऐसे में तात्कालिक परिस्थिति यानी अपनी बेरोजगारी से

मजबूर होकर सुभाष राजनीतिज्ञों के हाथ इस्तेमाल हो जाता है, किन्तु उनकी असलियत जान कर दुबारा उस ओर नहीं जाता अपितु अंततः वैकल्पिक राजनीति में ही अपनी मुक्ति तलाशता है- 'मैं अपनी मुक्ति के लिए यह सब कर रहा हूं। मजदूरों और किसानों की मुक्ति से अलग नहीं है हम सबकी मुक्ति।'

किन्तु बाद में समय काफी बदल गया, वैकल्पिक राजनीति के लिए सार्वजनिक जीवन में कोई अवकाश नहीं बचा। देश के संकटकाल (आपातकाल) के बाद राजनीति में युवाओं की जो फौज आयी उसके सामने फौजी लाभ ही प्रमुख थे। इस पीढ़ी का प्रशिक्षण अध्ययन या जनान्दोलनों की आंच में तपकर नहीं हुआ था। चंद्रप्रकाश का उद्देश्य है, 'एक महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा जीप लेना जिसे वह आफिस में लगवा सके और टैक्सी स्टैण्ड का ठेका प्राप्त करना।' वह अपने दल की युवा शाखा का शहर मंत्री है। अपने उद्देश्यों के निर्धारण में वह खासा व्यावहारिक है, वह जाति का लाला (कायस्थ) हैं यानी जातिगत आधार पर वह जनाधार विहीन है इसलिए जनता की राजनीति वह नहीं कर सकता। वह ज्यादा से ज्यादा एम.एल.सी. बनना चाहता है।

चंद्र प्रकाश 'हाई कमान' से आये हुए एक सलाहकार से मिलना चाहता है, लेकिन अंततः नहीं मिल पाता। पार्टी कार्यालय में उसकी जीन्स बनियानधारी एक बुजुर्ग से मुलाकात तो हुई जरूर, पर उसकी सूचना भी सही नहीं साबित हुई। चन्द्र प्रकाश सोचता है- 'पार्टी की राजनीति की जो कुछ भी छवि आम जनता से जुड़ी थी, वह भी खत्म हो चली। छवि के नाम पर संघर्ष करने वालों को पीछे किया गया। पार्टी के लोगों के सिर से पहले टोपी उतरी अब कुर्ता पैजामा भी उतर रहा है। सफारी सूट का जमाना आ गया है। जाड़े में प्रिंस कट कोट का जमाना आ गया है। कुछ नहीं बस हाय हलो वालों की चांदी बन गई है। हाई कमान को विदेशी संस्कृति, विदेशी वाइफ और विदेशों में धनजमा करने वालों ने घेर लिया है। देश का पतन हो रहा है।'

यह संसार के सबसे बड़े लोकतंत्र के प्रमुख राजनीतिक दलों में दशकों से स्थगित आंतरिक लोकतंत्र की अभिव्यक्ति है कहानी के पाठ में।

'बायोडाटा' कहानी में मोती सिंह प्रदेश अध्यक्ष मनोनीत होते हैं। मनोनयन शब्द का संकेत भी इसी स्थगित आंतरिक लोकतंत्र की ओर है। यहां जमीनी छवि या संघर्ष कोई मायने नहीं रखता। मोती सिंह राजदेव को प्रदेश सचिव बनाना चाहते है। राजदेव उनकी जाति का नहीं है, मिश्र है, ब्राह्मण है। अपनी 'जाति के लोगों को आगे बढ़ाना' खुद को बांस करना हैं। मोती सिंह यह मानते हैं। यहां हम जातिगत समीकरण के दो रुपांतरण चंद्र प्रकाश एवं राजदेव के संदर्भ में देख सकते हैं।

'ऊसर' में चन्द्र प्रकाश अपने शहर में ही हाईकमान के सलाहकार से मिलने की जुगते भिड़ाता रहता है किन्तु राजदेव को दिल्ली जा कर हाईकमान की लेंडी तर करनी है। यानी राजनीति में सफल होने के लिए जन जुड़ाव से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है हाईकमान की पसन्द नापसन्द। विडम्बना है कि इसी व्याकरण के तहत ही हमारे समय के महत्वपूर्ण राजनीतिक दलों का कार्य व्यापार चल रहा है।

'मुक्ति' का कथा नायक सुभाष, आरम्भ में परिवार का लाड़ला और होनहार बेटा हैं, बाद में बेरोजगारी के दिनों में उसका परिवार के साथ समीकरण गड़बड़ा जाता है। बाद में जब वह किसानों मज़दूरों की मुक्ति के लिए काम करना शुरु करता हैं। तब पुनः परिवार से उसके रिश्ते महत्वपूर्ण एवं जीवंत हो उठते है। यानी जिस तरह की राजनीति से सुभाष यहां मुब्तिला है उनका पारिवारिक जीवन एवं पारिवारिक मूल्यों से विरोध नहीं है।

'ऊसर' के नायक चन्द्र प्रकाश को भी अपने कमज़ोर क्षणों में परिवार की याद आती है- 'मेरी मां कितनी तकलीफ़े झेलकर ज़िन्दगी बिता रही हैं। मुझ पर कितना भरोसा किया मेरी मां ने लेकिन मैंने राजनीति की धकापेल में पड़कर सब मटियामेट कर दिया। यह राजनीति बड़ी कुतिया चीज़ है। मैं लोफर और पापी हूँ। मुझे मां के आराम एवं बहन की शादी के लिए खून-पसीना एक करना चाहिए था लेकिन मैं यहां महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा जीप और टैक्सी स्टैण्ड के चूतियापे में फंसा हुआ था। बहन के अधेड़ होकर बदनाम होने में कुछ ही वर्ष बाकी है और मैं नेतागिरी के शौक में बंबू कटा रहा हूँ। धिक्कार है मुझको।

अब बायोडाटा के राजदेव मिश्र की बात करें। उसकी राजनीति की शुरुआत ही पारिवारिक दुर्घटना से होती है। जब वह अपनी सगी भाभी से छिछोरी हरकत कर बैठा था और इस कारण पिता ने उसे लाठियों से पीटा था। परिवार में उसका लगाव सिर्फ अपनी सावित्री से ही थोड़ा दिखाई देता है वह भी शादी के एक दम बाद के गुलाबी दिनों में ही और जब इस लगाव का रुपांतरण जिम्मेदारी में होने लगता है यानी सावित्री गर्भवती हो जाती है, तब राजदेव को राजनीति, विदेश नीति, कूटनीति सब याद आने लगती है। अंततः अपने राजनैतिक उद्देश्य यानी प्रदेश युवा संगठन का सचिव पद पाने के लिए वह प्रसूता सावित्री एवं अविकसित संतान से मिलने न जाकर मोती सिंह के साथ दिल्ली की ट्रेन पकड़ लेता है।

इन तीनों कहानियों में परिवार एवं पारिवारिक मूल्यों का यह अधोविकास एक अतःर्पाठात्मक रुपक का निर्माण करता है। 'वंसुधैव कुटुम्बकमं' की चिंताधारा की यह समकालीन परिणति भयावह एवं दुखद है।

19.6 'बायोडाटा' को समझना

'बायोडाटा' युवा राजनीति में बढ़ते जा रहे लम्पट, तत्वों की कहानी है। कथानायक राजदेव मिश्र सत्ताधारी दल की युवा शाखा का जिला मंत्री है। सावित्री उसकी पत्नी है, जिससे उसने उम्र के छत्तीसवें वर्ष में शादी की है, जब वह युवा शाखा का जिला मंत्री बना। वैसे उसका मानना है जिला मंत्री की पोस्ट भी कोई पोस्ट होती है। उसे तो और आगे जाना है, फिलहाल मोती सिंह की बदौलत प्रदेश सचिव की पोस्ट हासिल करनी है, दिल्ली जाकर।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि राजदेव जैसे नेता किसी जनान्दोलन की उपज नहीं है और न ही किसी पवित्र और पूत उद्वेश्य से राजनीति में आये है। उनके लिए सुख की सर्वोत्तम मलाई अभीष्ट है।

'पहुंचे हुए नेता हो, तो चोरी कराओ, स्मगलिंग कराओ, कत्ल कराओं, कोई बाल बांका नहीं कर सकता। बलात्कार करो, प्यार करो या वासना, दारु पियो, कानून की ऐसी-तैसी कर दो, कोई खौफ नहीं। पुलिस, पी.ए.सी. हो, हाकिम हुक्काम हों-डाकू बदमाश हो-सब हाथ जोड़े मिलेंगे। ईश्वर की अनुकम्पा से माल पानी की कमी नहीं। इंजीनियर वगैरह का ट्रांसफर करवा दो तो चांदी। रुकवाओं तो चांदी। चुनाव का पैसा है, उसमें खसोट लो। सूखा बाढ़ का पैसा है, उसे हड़प लो। यहां मौजाई से जुआं खोजवाने में लात खानी पड़ी, वहां सैकड़ो हसीनायें हासिल हो जाएं। चाहे जितने गुलछर्रे उड़ाओं कोई चूं चपड़ करने वाला नहीं है। उपर से फायदा यह कि पब्लिक में दबदबा भी। हमेशा जय जयकार होती रहे। काम कुछ खास नहीं। बस कुर्ता पायजामा पहन लो और मौका पड़ने पर भाषण झाड़ दो।

यह आपातकालोत्तर युवा राजनीति का स्मृति ग्रन्थ है। गांधी और लोहिया का युवाओं और छात्रों का उद्बोधन अब निश्फल हो गया है। यहां बस कुर्ता पैजामा पहन कर भाषण झाड़ना है और सब हासिल। इस स्मृति ग्रन्थ में प्रतिबद्धता निशिद्ध मूल्य है वह चाहे व्यक्ति के प्रति हो अथवा सिद्धान्त या परिवार के प्रति। जिस मोती सिंह के माध्यम से राजदेव प्रदेश सचिव पद पाना चाहता है उन्हीं मोती सिंह के बारे में उसका सोचना है- 'एक बार उसे प्रदेश राजनीति में घुसने का मौका तो मिल जाये तो दिखा दे अपना हाथ जगन्नाथ। सबसे पहले तो संगठन में अपने आदमी फिट करेगा। इसके बाद मोती सिंह को चार लात लगायेगा और खुद अध्यक्ष हो जायेगा।' हम पिछले खण्ड में अखिलेश की कहानियों की लघुत्रयी की बात कर चुके हैं। यहां पर भी हम 'ऊसर' के कथा नायक चन्द्र प्रकाश के बावत कुछ बात कहना चाहते हैं। मोती सिंह के प्रति जिस प्रकार का व्यवहार राजदेव करने की इच्छा रखता है वैसा ही व्यवहार चन्द्र प्रकाश अपने संरक्षक नेता जी के साथ कर चुका है। 'एक दिन नेता जी ने उसे तीन जोड़ी खद्दर का कुर्ता-पायजामा सिलवा दिया, जिसे शरीर पर धारण करने के बाद उसने कहा क्या मैं किसी नेता जी से कम हूँ। इस आत्म साक्षात्कार के चन्द दिनों बाद ही वह सत्ता पार्टी में नेता जी की विरोधी लाबी-विधायक जी के साथ हो लिया।'

हम यह कह सकते है कि 'बायोडाटा' कई मायने में ऊसर की उत्तर कथा है।

अखिलेश 'बायोडाटा' में स्वप्न विधि अपनाते हैं। यह स्वप्न विधि कहानी में एक लोक कथा रस भर देती है।

'वह कल्पना में भाषण करने लगा' भाईयों और बहनों। सज्जनों और देवीयों....। कल्पना में हों उसने पाया कि भाई घूस लेते पकड़ लिया गया और हवालात में बन्द है। भाभी-हाथ जोड़कर गिड़गिड़ा रही है, मेरे नेता देवर छुड़ा लो मेरे पति अर्थात अपने भइया को' भाभी उस पर लुढ़की आ रही हैं .... लुढ़की आ रही हैं। उसने झिटक दिया, हम पर न लुढ़को। हमारे सिर में जुआं और चीलर हैं। भाभी गई पिता आ गये। उन्होंने उससे मिलने के लिए पर्ची पर अपना नाम लिखकर भेजा। उसने नौकर से कहा, जाओ कह दो कि अभी मैं जुआं निकलवा रहा हूँ। मेरे पास फुर्सत नहीं है। तीन दिन बाद मिलने आये तो विचार करुंगा। भाई को तो उसने पहचानने से भी इंकार कर दिया।

इसी प्रकार के कई दिवा स्वप्न कहानी के पाठ में है। इन दिवा स्वप्नों पर बात करते समय हमें पंचतंत्र की प्रसिद्ध सोम शर्मा के पिता की कथा स्मरण हो आती है-

> 'अनागतवतीम् चिन्तामअसम्भाव्याम् करोति यः।
>
> स एव पाण्डुराशेते सोमशर्मा पिता यथा।।
>
> हम इसे अन्तर्पाठात्मकता के माध्यम से भी समझ सकते है।

हम राजदेव के घरेलू पारिवारिक जीवन के बारे में भी कुछ बातें कर लें। भाभी के साथ छिछोरी हरकत के फलस्वरुप पड़ी मार के बाद ही उसने राजनीति का दामन थामा था। विवाह के पश्चात राजदेव कुछ समय तक मुग्ध पति है, परिवार में भी हास परिहास का वातावरण है- भाभी मुस्कुराती कि लाला जी अब मेरी गोद में नहीं लुढ़कोगे, जुआं खोजवाने, कहां हरदम छुछुआते रहते थे, कहां चौदह बरस तक बोले नहीं।' यह एक उत्तर भारतीय निम्न मध्यवर्गीय परिवार का देवर-भाभी सम्बन्ध है, जिसमें हास परिहास तनाव आदि के विभिन्न रंग है।

सावित्री से विवाह के पश्चात राजदेव घर में तो मुग्ध पति है किंतु बाहर उसका राजनीतिक रुप एकदम सक्रिय है वह बड़ी चालाकी से अपने वैवाहिक प्रसंग का

राजनैतिक अनुवाद करता है- 'वह कहता भारत वर्ष के नवयुवकों को बाल विधवाओं और विपन्न कुंवारी के उद्धार के लिए आगे बढ़कर महानता की मिसाल कायम करनी चाहिए। मुझे देखिए, मैंने तो एक दुखियारी की ज़िन्दगी संवार दी। मेरी बीबी आज सुखी है और मेरा अहसान मानती है।' सावित्री के प्रति राजदेव का काम जनित लगाव ज्यादा दिन तक नहीं चल पाता हैं। एक तो जीर्ण-शीर्ण आर्थिक स्थिति दूसरी ओर राजनीति की पुकार सावित्री को प्रसव के लिए मैके जाना ही पड़ता है।

सावित्री एवं राजदेव की संतान अल्पविकसित है। लार एवं थूक में लिथड़ी हुई। बासी तरोई की तरह चिचुकी। गोरी-गोरी पिलपिली लगता मृत्यु ने ढेर सारा बलग़म थूका हो।

'ऐसी सन्ताने बचती नहीं। मां के आंसुओं से प्यास बुझाने वाली औलादें ज्यादा दिन जीती नहीं। ये जल्दी से जल्दी मर जाने के लिए पैदा होती हैं। पर संतान मरी नहीं वह तो ताजा दम हो रही थी। जैसे किसी मायावी का छल हो, संतान स्फूर्त एवं गतिमय हो रही थी। बहुत द्रुत रतार से। जबकि मां पीली पड़ती जा रही थी। अजीब तारतम्य था एक की चेतना दूसरे की मूर्छा में। ऐसा मालूम होता था, संतान अदृश्य नली से मां का बूंद-बूंद रक्त पी रही है। मां निचुड़ रही है, कमजोर और अचेत होती जा रही है। संतान ताज़ादम और ललछौंह हो रही है।

यह प्रसंग बहुत महत्वपूर्ण और खास ध्यान की मांग करता है। संतान की चेतना एवं सावित्री की मूर्छा का तारतम्य हमें वह सूत्र देता है। जिससे हम इस रुपक को समझ सकते है। लम्पट एवं भ्रष्ट-राजनीति एवं भारतीय आम जनता का संयोग जिस भ्रष्टाचार के रुप में फलवान हो रहा है वहां इसी प्रकार का तारतम्य होगा। भ्रष्टाचार का पुष्ट होते जाना आम जनता की दुश्वारियां ही बढ़ा सकता है। यहां कहानी अपने रुपक विधान से एक गम्भीर अर्थ रचती है।

अपनी कहानी ग्रहण में भी अखिलेश राजकुमार के पेट हगना चरित्र के माध्यम से एक रुपक रचते है जहां राजकुमार का चरित्र स्वातंत्र्योत्तर दलित जातीयता का रुपक बन जाता है। ध्यान दीजिए जिस समय सावित्री प्रसव के बाद जीवन हेतु संघर्ष कर रही है लगभग उसी समय राजदेव दिल्ली जा रहा है और उसके हाथ में मोती सिंह का दिया हुआ एक संतरा है, जिसमें बड़ा रस है। एक ओर तो संतान किसी अदृश्य नली से मां का खून पी रही थी दूसरी ओर पिता के हाथ में एक रसवान फल था। सन् अस्सी के बाद राजनीतिक स्तर का जो अवमूल्यन शुरु हुआ है उसके पूर्ण सहमेल में है यह दृश्यबंधन। शास्त्रीय शब्दावली में कह सकते है यहां प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों की व्यंजना हुई है। कहना चाहें तो इसे समासोक्ति भी कह सकते हैं।

अखिलेश ने 'बायोडाटा' में कुछ नई सूक्तियां गढ़ी है जिसके माध्यम से एक राजनीतिक के जीवन का सही-सही भाष्य किया जा सकता है। 'सुख की सर्वोत्तम भलाई राजनीति के दूध में पड़ती है।' या 'हम लोगों के जीवन के लिए राजनीति जीवन संगिनी है और जीवन संगिनी रखैल। जो रखैल को जीवन संगिनी समझता है वह लक्ष्य से सदैव दूर रहता है।' इन सूक्तियों के माध्यम से कहानी की भाषा में एक अतिरिक्त चमक पैदा हो गयी है।

'बायोडाटा' की भाषा एक खिलंदड़ापन लिए हुए है किन्तु अवसरानुकूल करुणा से भरी हुई है। खासकर वह प्रसंग जहां सावित्री अपने मैके के लिए विदा हो रही है। यहां राजदेव का भी थोड़ा मार्मिक पक्ष उभर कर सामने आता है। इस कहानी में हम भाषा की एक ऐसी गढ़न देखते है जो स्वाभाविकता की हद तक सहज है, जैसे हमारी लोक कथायें गढ़ी से हुई होकर भी सहज एवं सरल लगती हैं। भाषा क्षेत्रीय संस्कृति से एक संवाद

स्थापित कर लेती है एक दम आरम्भ में ही 'गन्ना, गंजीः मटर का नाश्ता , बिना चाकू की मदद से छिल जाने वाला गोल आलू एक ऐसा इंद्रिय बोध पैदा कर देते है, जिसमें अवध अंचल की भाषा एवं संस्कृति समायी हुई है।

शीर्षक की सार्थकता

'बायोडाटा' मुख्यतः किसी नौकरी के लिए आवेदन भरने के लिए तैयार किया जाता हैं। यहां मुख्यतः आवेदक नहीं अपितु उसके द्वारा उपलब्ध करायी गई सूचनायें प्रमुख होती है। हमारी कहानी 'बायोडाटा' जिस समय से वाबस्ता उसमें राजनीति भी एक रोजगार की तरह हो गयी है, यानी सेवा भावना सिर्फ एक शोभाकर धर्म है। सो यहां भी बायोडाटा महत्वपूर्ण हो गया है, बायोडाटा की सूचनाओं से वास्तविकता का कितना सहमेल है, यह हम कहानी के पाठ से देख सकते हैं। कहानी में बायोडाटा शब्द दो बार आया है, एक बार कहानी के बीच में - 'वह अपनी युक्ति पर गदगद था और सोच चुका था टिकट के लिए अपने बायोडाटा में जोड़ देगा कि विपदा की मारी एक लड़की को बिना दान दहेज अपना बनाकर सेवा की हैं।' दूसरी बार कहानी के अंत में जब राजदेव मोती सिंह के साथ ए0सी0 डिब्बे में बैठकर दिल्ली जा रहा है- 'राजदेव के हाथ में मोती सिंह का दिया संतरा था। संतरे को पकड़े हुए वह विचारमग्न था।

- यदि बच्चा मर गया तो?
- तो क्या दूसरा पैदा कर लेंगे।
- बीबी मर गई तो?
- तो क्या .... तो क्या .....।
- दोनों मर गये तो?

उसने निश्चय किया यदि ऐसा हुआ तो, अपने बायोडाटा में जोड़ेगा। पब्लिक की सेवा में पार्टी की खिदमत में-गृहस्थी तबाह हो गयी। परिवार उजड़ गया। इस सम्बन्ध में टुटपुंजियां का तार मिला तो नत्थी कर देगा।

कहानी के अंतिम अंश के सहमेल से व्यंग्यार्थ खुलता है। कार्पोरेट प्रबंधकीय नुस्खों के अनुहार पर राजनीतिक दलों का प्रबंधन वास्तविकता तक न पहुंच पाने के लिए किस कदर अभिशप्त है इस विडम्बना को भी यहां समझा जा सकता है।

19.7 सारांश

'बायोडाटा' अखिलेश की एक महत्वपूर्ण कहानी है। अब अखिलेश प्रायः लम्बी कहानियां ही लिखते है। 'बायोडाटा' उस अर्थ में लम्बी कहानी नहीं है, किन्तु अखिलेश की ही एक अन्य कहानी 'उसर' को भी ध्यान में रखे तो 'बायोडाटा' उससे कुछ इस प्रकार जुड़ जाती है जैसे दोनों एक दूसरे का पूर्व उत्तर प्रसंग हों।

'बायोडाटा' अपने पाठ के बाहर एक बड़े संसार से संवाद कहती है, राजनीतिक, भ्रष्टाचार के नब्ज पर हाथ रखती है और यह सब करते हुए वह सिर्फ सार्वजनिक जीवन तक ही सीमित नहीं रहती अपितु घरेलू वृत की घटनायें भी कहानी के पाठ का अपरिहार्य हिस्सा बनती हैं।

असामान्य घटनाओं को रुपक विधान के आधार पर विशिष्ट बना देना अखिलेश बखूबी जानते हैं। सावित्री का अविकसित शिशु घृणित भ्रष्टाचार के रुपक में बदल जाता है जिसका विकास भारतीय जनता (सावित्री) के जीवन की कीमत पर होता है।

प्रतिबद्धता और कला दोनों के निर्देशांकों की सहज साधना अखिलेश के कथा साहित्य की विशेषता है। अखिलेश की प्रतिबद्धता उनके कथा रस में बाधक नहीं बनती 'बायोडाटा' कहानी में भी हम यह देख सकते हैं। अखिलेश अपनी कहानी श्रृंखला के पात्र रतन उमार के माध्यम से एक महत्वपूर्ण बात कहते हैं- 'कला को यथार्थ एवं यथार्थ को कला बना दो क्योंकि दोनों अलग रहने पर सत्ता संरचनाएं होती हैं।' अखिलेश का कथा साहित्य स्वयं इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। खिलंदड़ी भाषा भी अपने समय एवं सत्य को उद्घटित करने में कितनी सहायक हो सकती है यह बायोडाटा की भाषा के उदाहरण से समझा जा सकता है। हंसाते-हंसाते गंभीर बात कह जाना, अवसरानुकूल मार्मिक हो जाना 'बायोडाटा' की भाषिक विशेषता है। ऐसी भाषिक सिद्धि कम ही दिखाई देती है।

अखिलेश की कहानियों में युवा अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराते हैं। इस युवा वर्ग के भविष्य के सभी सम्भव एवं तार्किक रुपांतरण हमें अखिलेश की कहानियों में मिल जायेंगी। इस प्रसंग में हमने अभी तक युक्ति, ऊसर एवं बायोडाटा की ही बात की है। किंतु यक्षगान का छेल बिहारी भी इस श्रृंखला से अलग नहीं है। यही नहीं चिट्ठी कहानी में युवा मित्रों की कथा लिखते समय ''परिसर कथा'' का जो चलन अखिलेश ने जाने अनजाने शुरु कर दिया था उसकी तूती समकालीन अंग्रेजी कथा साहित्य में बढ़कर बोल रही हैं।

19.8 अभ्यास

1. 'सुख की सर्वोत्तम मलाई राजनीति के दूध में ही पड़ती है।' इस कथन के सम्बन्ध में विस्तार से मत प्रकट कीजिए।
2. 'नब्बे का लम्बा दशक' एवं हिन्दी कथा साहित्य के अन्तर्सम्बन्ध पर एक आलेख लिखिए।
3. अखिलेश के कथा साहित्य में आये हुए युवाओं के आधार पर समकालीन सामाजिक राजनीतिक परिदृश्य का विवेचन कीजिए।
4. सावित्री के अविकसित शिशु के रुपक को स्पष्ट कीजिए।
6. साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर राजनीति में बढ़ते हुए लम्पट तत्वों के प्रभाव पर एक विस्तृत टिप्पणी कीजिए।

इकाई 20 सिलिया : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 दलित साहित्य की अवधारणा

20.3 दलित साहित्य की सामाजिक-दार्शनिक पृष्ठभूमि

20.4 दलित साहित्य और उसका सौन्दर्यशास्त्र

20.5 सुशीला टाकभौरे और 'सिलिया'

20.6 'सिलिया' : दलित नारी चेतना की अभिव्यक्ति

20.7 दलित सौन्दर्यशास्त्र और 'सिलिया'

20.8 सारांश

20.9 अभ्यास

20.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप दलित साहित्य और आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण लेखिका के रूप में सुशीला टाकभौरे के कथा साहित्य से परिचय प्राप्त करेंगे/करेंगी। इनकी सबसे सशक्त कहानी 'सिलिया' पाठ हेतु आपके सामने है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- दलित आन्दोलन की सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि को जान सकेंगे/सकेंगी;
- सुशीला टाकभौरे के कथा साहित्य से परिचय प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी;
- 'सिलिया' कहानी के माध्यम से सामाजिक विद्रूपता के सच को जान सकेंगे/सकेंगी;
- वर्ण व्यवस्था के प्रति जारी प्रतिरोध और प्रतिकार के साथ उसके आक्रोश को गहराई से महसूस कर सकेंगे/सकेंगी;
- दलित स्त्री की अस्मिता, उसकी वेदना और, पीड़ा के साथ दलित स्त्री-विमर्श को पहचान सकेंगे/सकेंगी;
- भारतीय सौन्दर्य चिन्तन, पाश्चात्य सौन्दर्य चिन्तन और मार्क्सवादी सौन्दर्य चिन्तन के बीच निर्मित होते दलित सौन्दर्य चिन्तन के विचार बिन्दुओं की परख कर सकेंगे/सकेंगी।

20.1 प्रस्तावना

सुशीला टाकभौरे दलित कथा आन्दोलन की महत्वपूर्ण लेखिका है। ये उस दौर में साहित्य क्षितिज पर आती है जब हिन्दी साहित्य में दलित आन्दोलन अपना पैर पसार रहा था। ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, डॉ0 दयानन्द बटोही, श्यौराज सिंह बेचैन, मोहनदास नैमिशराय सहित अनेक साहित्यकार अपनी लेखनी से दलित साहित्य की इबारत लिख रहे थे। मोटे तौर पर हिंदी में दलित साहित्यकार सातवें दशक में कहानी लिखने लगे थे, किन्तु इनकी पूरी पहचान आठवें दशक में हो सकी।

इसके पहले मराठी में दलित चेतना धारा अपनी राह बना चुकी थी। दया पवार, बाबुराव बागूल, अर्जून डांगले, नामदेव ढसाल, अविनाश डोलस, बेबीताई कांबले, उर्मिला पवार आदि का कथात्मक लेखन मराठी कथा साहित्य में पहचान बना चुका था। यहाँ तक कि हिन्दी कथा पाठक भी उन्हें जानने और समझने लगा था। यह मराठी में दलित चेतना के सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक और दार्शनिक विमर्श का दौर था, जहाँ से हिन्दी दलित साहित्य अपनी ऊर्जा प्राप्त कर रहा था, पहचान निर्मित कर रहा था।

हिन्दी दलित कहानी के लिए आठवाँ दशक अत्यन्त महत्वपूर्ण है जिसमें कई रचनाकार उभरकर अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं और अपनी कहानियों के द्वारा दलित साहित्य को एक मजबूत आधार देने की कोशिश करते हैं। दलित कथाकारों का यह प्रयास जहाँ सर्जनात्मक आवेग से स्वयं को तलाशने की प्रक्रिया के साथ सामाजिक परिवेश की गम्भीर चुनौतियों से टकराता है और हिन्दी कथा-साहित्य को एक नवीन परिस्थिति और चरित्रों के तरफ आकृष्ट करता है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं ''हिन्दी कहानी के अनेक उतार-चढ़ावों और तथाकथित आन्दोलनों से अलग दलित कहानी बदलते हुए सामाजिक परिदृश्य के यथार्थ चित्रण की एक विशिष्ट धारा के रूप में सामने आती है जिसकी ओर हिन्दी समीक्षकों का ध्यान बहुत देर से गया है, हिन्दी कहानी में नयी कहानी, समान्तर कहानी और फिर जनवादी कहानी. ..... आदि पड़ावों से गुजरते हुए वर्तमान हिन्दी कहानी का रूझान उसे वैचारिक प्रतिबद्धता से जोड़ता है। हिन्दी कहानी के लिए यह एक बदलाव का दौर था जिसमें यथार्थवादी चित्रण और मध्यवर्गीय जीजिविषा का बहुत ही निकटता से सम्बन्ध प्रस्तुत हुआ था और पाठकों ने कल्पनालोक और रोमानी मायावी संसार से मुक्त होकर एक ताजगी का अहसास महसूस किया था।''

वे आगे कहते हैं - 'हिन्दी दलित कहानी की यह यात्रा सहज और सरल यात्रा नहीं है। लम्बी संघर्ष यात्रा है जो सातवे दशक से नवें दशक तक काटों से चलते हुए लहुलुहान होकर भी अपने विस्फोटक तेवर की पहचान बनाने में सफल रही है। दलित कहानी ने समस्याओं से मुठभेड़ की है। अपने सर्जनात्मक आक्रोशित स्वर को यथार्थ की भूमि पर खड़ा करके बदलाव के नये आयाम स्थापित किये हैं। यथार्थ की संघर्षपूर्ण स्थितियों, सामाजिक विषमताओं, भेदभाव, अन्तर्विरोधों को चित्रित करने की प्रवृत्ति उसने किसी दबाव या प्रतिक्रिया के तहत ग्रहण नहीं की है बल्कि यह उसका स्वभाविक और वस्तुनिष्ठ स्वरूप है। आवेग पूर्ण विरोध के द्वारा परिवर्तन की पक्षधरता उसका जीवन मूल्य है।'

नवाँ दशक हिन्दी दलित कहानी के स्थापना का दशक कहा जा सकता है। जिसमें एक साथ कई पत्रिकाएँ दलित साहित्य पर विशेषांक निकालती है मसलन-हंस (राजेन्द्र यादव) युद्धरत आम आदमी (रमणिका गुप्ता) वर्तमान साहित्य, सुमन लिपि, लोकमत समाचार, संचेतना, कथानक, इण्डिया टुडे, वसुधा, पश्यन्ति, दस्तक आदि तो दूसरे तरफ अनेक कथा संकलन भी आये-महीप सिंह, वार्षिक कथा-संकलन, डॉ. पुष्पपाल सिंह, 'कहानी चयन' 1996, डॉ. एन. सिंह का कहानी संग्रह 'यातना की परछाइयाँ', डॉ. कुसमु वियोग का 'समकालीन दलित कहानियाँ', मोहनदास नैमिशयराय का कहानी संग्रह 'आवाजें', सूरज पाल चौहान का 'हैरी कब आयेगा', डॉ. दयानन्द बटोही के 'सुरंग', 'कफन चोर', यातनाओं के जंगल, डॉ. सुशीला टाकभौरे का 'टूटता वहम' तथा ओम प्रकाश वाल्मीकि का 'सलाम' आदि।

दलित कथा यात्रा में जहाँ डॉ0 प्रेम कुमार मणि, चन्द्रेश्वर कर्ण, श्यौराज सिंह बेचैन, सुरेश कांटक, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, दयानन्द बटोही, डॉ. प्रेमशंकर ने यथार्थपरक

संवेदनशीलता और सामाजिक विमर्श को अपनी कहानियों द्वारा आवाज दी है, वहीं डॉ सुशीला टाकभौरे, रजत रानी मीनू, कावेरी, कुसुम मेघवाल आदि दलित स्त्री की पीड़ा और यातना को उकेरने में सफल हुई है। अतः प्रस्तुत इकाई में सुशीला टाकभौरे की चर्चित कहानी 'सिलिया' का अध्ययन करना है।

20.2 दलित साहित्य की अवधारणा

दलित शब्द का अर्थ है– जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है उत्पीड़ित शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट, मर्दित, पस्त-हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित, अपमानित, प्रताड़ित, पीड़ित आदि।

दलित साहित्य की संज्ञा मूलतः प्रश्नसूचक है। दलित साहित्य की जितनी भी परिभाषाएँ हैं उनका मात्र एक स्तर है, सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा। अम्बेडकरवादी विचार इस साहित्य की मुख्य प्रेरणा है। हिन्दी दलित साहित्य के समर्थ रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार दलित साहित्य की परिभाषा है– ''दलित शब्द दबाये गये, शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित के अर्थों के साथ जब साहित्य में जुड़ता है तो विरोध और नकार की ओर संकेत करता है। वह नकार या विरोध चाहे व्यवस्था का हो, सामाजिक विसंगतियों या धार्मिक रूढ़ियों, आर्थिक विषमताओं का हो, या भाषा प्रान्त के अलगाव का हो, या साहित्य परम्पराओं, मानदण्डों या सौन्दर्यशास्त्र का हो, दलित साहित्य नकार का साहित्य है, जो सम्बन्धों से उपजा है, जिसमें समता, स्वतंत्रता और बन्धुता का भाव है।'' उनका यह भी मानना है कि दलित की व्यथा, दुःख, पीड़ा शोषण का विवरण देना या बखान करना ही दलित चेतना नहीं है, या दलित पीड़ा का भावुक और अश्रु विगलित वर्णन जो मौलिक चेतना से विहीन हो। चेतना का सीधा सम्बन्ध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि से तिलिस्म को तोड़ती है। सारे मानदण्डों को ध्वस्त करती है वह दलित चेतना है।

वैदिक काल एवं स्मृति काल की वर्ण-व्यवस्था और जातिव्यवस्था से इस शब्द का बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। वर्णव्यवस्था से शूद्र, जातियों, उपजातियों का विकास होता रहा है। फिर उन्हें चाण्डाल, अस्पृश्य, अछूत, हरिजन आदि अनेक नामों से पुकारा गया। उनके साथ समाज और राजसत्ता ने जो अमानवीय व्यवहार किये वे दर्दनाक है। इसे रोकने के प्रयास समाज-सेवकों ने समय-समय पर किये। 'दलित' शब्द को परिभाषित करते हुए श्रीमती कुसुम मेघवाल कहती हैं-'दलित वर्ग का प्रयोग हिन्दू समाज व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परागत रूप से शूद्र माने जाने वाले वर्गों के लिए रूढ़ हो गया है। दलित वर्ग में वे जातियाँ आती हैं, जो निम्न स्तर पर है और जिन्हें सदियों-सदियों से सताया गया है।'

'दलित' शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था से अभिशप्त दलित, शोषित, उत्पीड़ित बाधित नारी और बच्चे भी आते हैं। भूमिहीन, अछूत, बँधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित-निराश्रित भी दलित ही है। 'दलित' शब्द जहाँ व्यक्ति को अपनी अस्मिता, स्वाभिमान और अपने गौरवमय इतिहास पर दृष्टिपात करने पर बाध्य करता है, वहीं पर असंगति, वर्तमान स्थिति और तिरस्कृत जीवन के बारे में सोचने के लिए बाध्य करता है।

रीमन् स्वामी बोधानंद जी महास्थविर 'दलित' की परिभाषा करते हुए कहते हैं-''दलित शब्द का प्रयोग इसलिए किया जाता है कि अग्रसर हिन्दू जातियों ने और उन्हीं की कुटिल नीति में पड़कर पिछड़ी हिन्दू जातियों ने भी इन बेचारों के समस्त धार्मिक,

सामाजिक, राजनीतिक आदि अधिकारों को जो मनुष्यताधर्मी होने के कारण उन्हें स्वभाव से ही प्राप्त थे, उन्हें ऐसा कुचल और दबा डाला है कि मनुष्य होते हुए भी उनकी अवस्था कुत्ते, बिल्ली और मक्खी-मच्छर से भी गयी बीती हो गयी है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि के अनुसार- दलित शब्द साहित्य के साथ जुडकर एक ऐसी साहित्यिक धारा की ओर संकेत करता है, जो मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं की यथार्थवादी अभिव्यक्ति है।

दलित चिन्तक कंवल भारती की धारणा है कि 'दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है। जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति को साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटी में आता है।'

दलित साहित्य की अवधारणा एवं स्वरूप की चर्चा मराठी में शुरु हुई और धीरे–धीरे उसका विकास भारत की अन्य भाषाओं में हुआ। महाराष्ट्र में जब दलित पैंथर आंदोलन से जुड़े लेखकों ने दलित साहित्य की आवश्यकता पर अपने विचार प्रकट करना आरंभ किया, तब दलित साहित्य को 'मास लिटरेचर' यानी जनसाहित्य कहने की भूमिका रखी गई। राजा ढाले, अविनाश डोलस, नामदेव ढसाल आदि के अनुसार– दलित साहित्य जन साहित्य भी है, यानी मास लिटरेचर है, यह लिटरेचर ऑफ एक्शन भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरूद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित-साहित्य जो सामाजिक न्याय की आकांक्षा एवं भाईचारे की भावना जताता है।

मराठी के कवि नारायण सूर्वे का कहना है कि 'दलित शब्द की मिली-जुली परिभाषाएँ हैं। इसका अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी जातियाँ ही नहीं, समाज में जो भी पीड़ित हैं, वे दलित है। ईश्वर निष्ठा या शोषण निष्ठा जैसे बन्धनों से आदमी को मुक्त रहना चाहिए। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व सहज स्वीकार किया जाना चाहिए। उसके सामाजिक अस्तित्व की धारणा समता, स्वतन्त्रता और विश्वबन्धुत्व के प्रति निष्ठा निर्धारित होनी चाहिए। यही दलित साहित्य का आग्रह है। 'दलित साहित्य' संज्ञा मूलतः प्रश्न सूचक है। महार, चमार, माँग कसाई, भंगी जैसी जातियों की स्थितियों के प्रश्नों पर विचार तथा रचनाओं द्वारा उसे प्रस्तुत करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है (दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृ. 15 से उध्दृत)।

मराठी दलित साहित्य की अवधारणा को लेकर सन् 1971 को महाड़ में हुआ 'दलित साहित्य सम्मेलन' विशेष महत्व रखता है। इस सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए बाबुराव बागूल ने दलित साहित्य की व्यापक भूमिका रखी। कहा जाता है कि इस सम्मेलन के बाद ही दलित साहित्य की सर्व समावेशक व्याख्या एवं स्वरूप पर चर्चा आरंभ हुई। दलित और गैर दलित तथा स्वानुभूति और सहजानुभूति का भेद एवं विवाद खत्म हुआ। दलित साहित्य की व्यापक परिभाषा करते हुए बागूल कहते हैं कि 'महात्मा बुद्ध, कबीर, कार्ल मार्क्स, महात्मा फुले और डॉ. आंबेडकर के सम्यक विचार और शोषण के विरुद्ध संघर्ष से प्रेरणा लेकर दलित साहित्य का अभ्युदय हुआ है। यह साहित्य मनुष्य की शोषण से मुक्ति और मानवीयता के पक्ष में लिखा जा रहा है। बाबुराव बागूल 'दलित' विशेषण को सम्यक क्रान्ति मानते हैं और दलित साहित्य का सृजन कोई भी रचनाकार कर सकता है लेकिन उसकी संवेदना परिवर्तनकार्मा और कांन्तिदर्शी चेतना से युक्त होनी चाहिए। भी जरूरी है।

यहीं मान्यता वरिष्ठ आलोचक अर्जुन डांगले की भी है। उनका कहना है कि 'दलित शब्द का अर्थ साहित्य के सन्दर्भ में नए अर्थ देता है। दलित यानी शोषित, पीड़ित, समाज। ध र्म व अन्य कारणों से जिसका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शोषण किया जाता है, वह मनुष्य ही कांन्तिदर्शी चेतना से लिखता है। वह मनुष्य ही क्रान्ति कर सकता है। यह दलित साहित्य का विश्वास है'।

अतः'दलित' शब्द दबाए गए, शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित के अर्थों के साथ जब साहित्य से जुड़ता है तो व्यवस्था, सामाजिक विसंगतियाँ, धार्मिक रूढ़ियाँ, आर्थिक विषमता के साथ-साथ साहित्यिक परम्पराओं, मानदण्डों या सौन्दर्यशास्त्र के प्रति नकार प्रदर्शित करके विद्रोह एवं प्रतिरोध की संस्कृति का निर्माण करता है। दलित साहित्य नकार और प्रतिरोध का साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है तथा जिसमें समता, स्वतन्त्रता और बन्धुता का भाव है और वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध भी है।

साहित्य के साथ दलित शब्द के जुड़ते ही उसकी व्यापकता और अधिक क्रान्ति बोधक हो जाती है। अर्थ और अधिक व्यंजनात्मक होकर साहित्य की भूमिका और सामाजिक उत्तरदायित्वों को और अधिक विश्लेषित करने की क्षमता हासिल कर लेता है। मानवीय संवेदनाओं के सरोकारों से जुड़कर सामाजिक प्रतिबद्धता स्थापित करता है।

दलित साहित्य की जितनी भी परिभाषाएँ हैं, उनका एकमात्र स्वर है— सामाजिक परिवर्तन। अम्बेडकरवादी विचार ही उसकी एकमात्र प्रेरणा है। बाबुराव बागूल के अनुसार, 'मनुष्य की मुक्ति को स्वीकृत करने वाला, मनुष्य को महान मानने वाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का प्रबल विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।

दलित साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत डॉ. अम्बेडकर और उनका विचार-दर्शन है। सातवें दशक में शिक्षित होकर कार्यक्षेत्र में उतरे दलित लेखकों की जद्दोजहद और संघर्ष ने मराठी में जिस तरह दलित साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार की ठीक उसी तरह हिन्दी में भी दलित साहित्य की भूमिका रखी गई लेकिन उसकी नोटिस काफी विलम्ब से ली गई। सातवें दशक में ही दलित पत्र-पत्रिकाओं में दलित साहित्य प्रकाशित होने लगा था। इस दौर में 'निर्णायक भीम' (सम्पादक आर. कमल, कानपुर) पत्रिका ने दलित लेखकों को एक मंच प्रदान किया। उसकी बदौलत आज हिन्दी के कई नाम उभकर सामने आए हैं। दलित पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन इस संघर्ष के लिए अनुकूल साबित हुआ। इधर के दिनों में हिंदी की अनेक पत्र पत्रिकाओं में दलित साहित्य प्रकाशित हुआ है और इस दलित साहित्य ने साहित्य के क्षेत्र में नये सौंदर्य शास्त्रीय प्रतिमानों को विकसित किया है।

20.3 दलित साहित्य की सामाजिक-दार्शनिक पृष्ठभूमि

'दलित चेतना' मूलतः वर्णव्यवस्था के तहत जारी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दमन के प्रतिरोध और प्रतिकार की चेतना है। 'प्रतिरोध' का आशय है-उस यथास्थितिवादी व्यवस्था को आदर्श मानने से इन्कार करना जो सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्तर पर मानवीय गरिमा के भौतिक विकास के अवसरों को सबके लिए सुलभ नहीं होने देना चाहती, और 'प्रतिकार' का आशय है - सदियों के सामाजिक अपमान और उत्पीड़न को अपनी नियति मानने से इनकार करते हुए सामूहिक 'स्व' के पक्ष में खड़ा होना। इस प्रकार दलित चेतना जातिवादी दंश से उपजा सवाल है जो साहित्य के स्तर पर अंधश्रद्धा, शब्दप्रामाण्य, ग्रन्थप्रामाण्य, आत्मा, ईश्वर और उस पर आधारित समस्त नैतिकता और धर्मसत्ता को अस्वीकार करता है। इस प्रकार यह भारतीय साहित्य के मूल मंत्र 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'

का पुनर्मूल्यांकन करने के बाद इसको भी निषिद्ध करता है। इसके स्थान पर वह ''सबब पापस्य अकरणं कुशलस्य उपसम्पदा सचित परियोदपने एतं बुद्धानुसासन'' को स्वीकार करता है।

दलित चेतना भारतीय जाति व्यवस्था की कोख से या कहें कि अस्पृश्यता की दारुण वेदना से पैदा हुई है। यह सदियों से सताये हुए लोगों की पीड़ा की अभिव्यक्ति है। लेकिन यह मूक अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, इसमें अस्वीकार, निषेध, विद्रोह और संघर्ष की आग भी है। इसकी आँच से उनका तिलमिला उठना स्वाभाविक है जो अपनी जड़ता में दूसरों की वेदना महसूस न कर सके। प्रमाण देने और आँकड़े पेश करने की जरूरत नहीं है, कोई भी इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकता कि भारत में दलितों के साथ अमानवीय सलूक हुआ है। इस सामाजिक अन्याय को देखते हुए दलित चेतना के उभार का विरोध कतई जायज नहीं है।

हिन्दी का दलित साहित्य देशव्यापी दलित चेतना की उपज है। बुद्ध, कबीर, फुले और बाबासाहब डॉ. अम्बेडकर इसकी प्रेरणा के स्रोत हैं। खास तौर से बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को उनकी गुलामी का अहसास कराया और उन्हें वाणी दी। उनकी प्रेरणा तथा मराठी के दलित साहित्य के प्रभाव स्वरूप हिन्दी में जो दलित लेखन हुआ है उसने दबी कुचली मौन जिन्दगी की मुखरता का एक नया आयाम प्रस्तुत किया है। इसे परम्परागत आलोचनात्मक प्रतिमानों के आधार पर परखने की जरूरत नहीं है। इसमें जातिव्यवस्था और शोषण से संतप्त प्रत्येक व्यक्ति के अनुभव की प्रामाणिकता है, उसकी अस्मिता, पहचान, पीड़ा और उत्पीड़न के विरोध में ललकार है, कटुता है, आक्रामकता है, अस्वीकार है, क्षोभ है, सीधा तर्क है, मूर्तिभंजन है, एक नया तेवर है। इस नये आयाम के सन्दर्भ में लेखकों और आलोचकों द्वारा कई प्रश्न उठाये गये हैं जो रचना और आलोचना के बुनियादी प्रश्न हैं।

प्रो. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने दलित साहित्य क्या है और किसे स्वीकार किया जाना चाहिए ऐसा एक उचित प्रश्न उठाया है। वे कहते हैं कि ''बहस का एक मुद्दा इस बात को लेकर छिड़ गया है कि दलित जातियों के लेखकों द्वारा लिखा साहित्य ही दलित साहित्य है। इस सन्दर्भ में विचारणीय बात यह है कि दलित जीवन का वस्तुपरक चित्रण जरूरी है, या दलित द्वारा किया गया चित्रण ? महत्व लेखक की जाति का है या उनके लेखन का ? यदि किसी सवर्ण लेखक ने दलित जीवन पर लिखते हुए अपनी सवर्ण मानसिकता का परिचय दिया है या उनका लेखन अप्रमाणिक है या उसकी नीयत में खोट है तब तो उसकी निन्दा होनी चाहिए पर इससे यह निष्कर्ष निकाल लेना कि किसी सवर्ण लेखक द्वारा दलित जीवन पर लिखा गया हमेशा ही अप्रमाणिक होगा, अतः उसे दलित जीवन पर लिखने का अधिकार नहीं है, उपयुक्त नहीं।'' इस सत्य को न स्वीकार करना संवेदनशीलता, कल्पना, परकाय प्रवेश और भाषा-क्षमता की उन अमोघ शक्तियों को अस्वीकार करना होगा जो किसी भी लेखक की बुनियादी शक्तियाँ होती हैं और जिनके बिना कोई भी व्यक्ति लेखक हो ही नहीं सकता। यदि ये शक्तियाँ किसी के पास नहीं है तो वह दलित होकर भी न तो किसी दलित की वेदना को महसूस कर सकता है, न उसे अभिव्यक्ति दे सकता है। हाँ इस सन्दर्भ में सवर्ण लेखकों को यह स्वीकार करना चाहिए कि दलित लेखकों द्वारा चित्रित जीवन एक नई वास्तविकता को सामने लाता है। इसमें गाँव की घृणित जाति व्यवस्था, उत्पीड़न, शोषण, सवर्णों की विकृत मानसिकता, अछूत स्त्रियों और बच्चों का नारकीय जीवन, कीचड़ और नालियों की बदबू, अपमान, उपेक्षा, आक्रोश और क्षोभ का एक नया लोक है जिसे अब तक नहीं के बराबर देखा गया।

दलित लेखकों ने इस जहालत भरी जिन्दगी को साहस के साथ शब्द दिया, इसे साहित्य में रेखांकित किया जाना चाहिए।

दलित साहित्य के दार्शनिक पक्ष को लेकर ओमप्रकाश वाल्मीकि उसे नये सन्दर्भों में व्याख्यायित करते हैं। वे कहते है - ''दलित साहित्य का वैचारिक आधार बुद्ध का दर्शन, ज्योतिबा फुले के विचार और डॉ. अम्बेडकर का जीवन-संघर्ष एवं वैचारिकी है। सभी दलित रचनाकार इस बिन्दु पर एकमत हैं कि ज्योतिबा फुले ने स्वयं क्रियाशील रहकर सामन्ती मूल्यों और सामाजिक गुलामी के विरोध का स्वर तेज किया था। ब्राह्मणवादी सोच और वर्चस्व या प्रभुत्व के विरोध में उन्होंने आन्दोलन खड़ा किया था। यही कारण है कि जहाँ दलित रचनाकारों ने ज्योतिबा फुले को अपना विशिष्ट विचारक माना वहीं डॉ0 अम्बेडकर को अपना शक्तिपुंज स्वीकार किया। ऐसा शक्तिपुंज जिससे समूचा दलित लेखन वैचारिक ऊर्जा ग्रहण करता है। डॉ. अम्बेडकर और ज्योतिबा फुले के विचारों की प्रखर शक्ति पाकर दलित साहित्य आन्दोलन प्रगति की ओर बढ़ रहा है। (दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वालमीकि, पृष्ठ- 53)

20.4 दलित साहित्य और उसका सौन्दर्यशास्त्र

वैचारिकता के धरातल पर वर्तमान परिदृश्य मूल्य संक्रमण का है। जहाँ एक तरफ कई विचारधाराएँ अपने वजूद के लिए संघर्ष कर रही है, वहीं दूसरी तरफ परम्परागत मूल्य अपना स्थान बनाये रखने के लिए सतत् प्रयासरत हैं। ऐसे में यदि कोई विचारधारा 'आन्दोलन' का रूप लेकर सम्पूर्ण साहित्याकाश को आच्छादित कर लेना चाहती हो और आन्दोलन भी मुद्दों का न होकर 'मूल्यों' और 'विचारधाराओं' का हो, हजारों वर्षों से 'शोषित' और 'पद-दलित' समुदाय यदि अपने हक की माँग ही न करता हो अपितु उसे प्राप्त कर लेना चाहता हो, और उसके लिए ठोस तर्क भी प्रस्तुत करता हो तो उसका अध्ययन निश्चय ही प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण है।

गाँवों, कस्बों, गलियों और गन्दी बस्तियों में सैकड़ों वर्षों से शोषित-पीड़ित जन के आहत हृदय से उद्वेलित विचार तन्तु जब संगठित हो उठते हैं तो उनके दर्द भरे आख्यान प्रकृति और जीवन का सत्य ही नहीं, साहित्य का सत्य भी बनने लगते हैं और उसे समाज की व्यापक सहानुभूति और समर्थन प्राप्त होने लगता है। उससे सम्बन्धित साहित्य सृजित होने लगता है। वेदना, करूणा, दया अपना दरवाजा खोल देती है। सहृदयता और संवेदना के तन्तु जागृत हो उठते हैं।

सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर रूपायित सामंतवादी सौंदर्यशास्त्र में नायक और नायिका राजवंशज होते हैं। उपवन, राजपथ, नगर, अंतःपुर, युद्धभूमि-यह सब उनके मंच थे। श्रृंगार उनका सर्वस्व था। समय के साथ-साथ सौन्दर्यशास्त्र की धारणाएँ भी बदल गयी हैं। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र दलित दृष्टिकोण से 'दलित' शब्द की परिभाषा के बल पर सौन्दर्य की धारणाओं को पुनः परिभाषित करता है। यहाँ सौन्दर्यशास्त्र का सम्बन्ध रूप और सार से है। मनुष्य की श्रेष्ठता से है।

डॉ0 बी. आर. अम्बेडकर के विचारों से प्रेरणा लेकर दलित साहित्य लेखन से जुड़े रचनाकारों का मानना है कि ''पुराने मूल्यों को गाड़ने का कर्तव्य हमारे कधों पर है। दलित लेखक कोई अधिनायक का उपदेशक नहीं है। उसको दलित के साथ घुल-मिल जाना चाहिए। दलित नजरिये के बल पर एक विशिष्ट सौन्दर्यशास्त्र बनाने की पूरी सम्भावना है।''

दलित साहित्य का मूल्यांकन करते समय भारतीय समाज-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, जातिभेद, जाति-संघर्ष, विषमताओं, भेदभावों, सामन्ती सोच, ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण, अन्तर्विरोधों, आर्थिक-सामाजिक संदर्भ, भारतीय मनःस्थितियों, सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों का विश्लेषण करना जरूरी है। साथ ही भारतीय राजनीति को समझकर साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन भी करना होगा। तभी दलित साहित्य का सही और यथार्थ परक मूल्यांकन संभव है।

प्रेमचन्द ने 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम सम्मेलन में कहा था, 'हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी और हमें निश्चय ही विलासिता के मीनार से उतरकर उस बच्चों वाली काली रूपवती का चित्र खींचना होगा जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाकर पसीना बहा रही है।' इस विचार दृष्टि को भी दलित साहित्य के सदर्भ में समझना चाहिए।

ओमप्रकाश वाल्मीकि के विचार हैं— 'पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र पंडित जगन्नाथ के 'वाक्यं रसात्मक काव्यं' को सूत्र की तरह दोहराता है जबकि दलित लेखकों की दृष्टि में साहित्य आचार्यों द्वारा निर्मित 'रस' अधूरे एवं पूर्वग्रहों से पूर्ण हैं। दलित साहित्य विद्रोह और नकार के संघर्ष से उपजा है। घोषित रसों के द्वारा दलित रचनाओं के इस केन्द्रीय भाव का मूल्यांकन नहीं हो सकता है।'

डॉ. एन. सिंह की धारणा है कि, 'दलित साहित्य का शब्द-सौन्दर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज और साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही सड़ी-गली परम्पराओं पर बेदर्दी से चोट करता है। वह शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीने वाले दलित को लड़ना सिखाता है, वह सिर पर पत्थर ढोने वाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में बतलाता है। उसे धर्म की भूल-भुलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाता है। उसके लिए जिस शाब्दिक प्रहार क्षमता की आवश्यकता है, वह उसमें है, और यही दलित साहित्य का शिल्प-सौन्दर्य है।'

दलित साहित्य की अन्तर्चेतना में वेदनामूलक संघर्ष भाव की प्रधानता है जो यातना से उपजी है। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव कहते हैं - 'साहित्य जिन तत्वों से अमर, स्थायी या सार्वभौमिक होता है, उनमें तीन मुझे सबसे प्रमुख लगते हैं-संघर्ष, यातना (सफरिंग) और विजन।' इस दृष्टि से दलित साहित्य में संघर्ष, यातना और सामाजिक अनुभव, परिवर्तन की अपेक्षा है। राजेन्द्र यादव का दलित साहित्य के बारे में यह भी मानना है- 'जो नया सौन्दर्यशास्त्र बनेगा, वह संघर्ष से शुरू होगा, उस यातना से शुरू होगा, चाहे वह उसका रिअलाइज करने अथवा उस यातना को, उसकी तकलीफ को, उसके भेदक रूप को समझने के रूप में हो, और उसके बाद बदलने की मानसिकता के रूप में हो, जिसे हम संघर्ष कह सकते हैं। तीसरा-एक स्वप्न के रूप में होगा, हमें करना क्या है ? हमें समानान्तर सौन्दर्यशास्त्र देना है, वैकल्पिक समाज बनाना है, सारा संघर्ष साहित्य में भी है और समाज में भी'।

दलित साहित्य में संघर्ष, यातना और विजन ये तीनों तत्व विद्यमान हैं। अम्बेडकर-दर्शन एवं विचार ने दलित साहित्य में संघर्षशीलता को तीव्रता दी है। वर्ण-व्यवस्था और भारतीय समाज-व्यवस्था ने दलितों पर जो अमानुषिक उत्पीड़न किया है, उस यातना की निचली तह से उठकर ऊपर आनेवाला दलित लेखक अपने भीतर जिस आँच को अनुभव करता है, वह भुक्तभोगी ही समझ सकता है। दलित साहित्य की दिशा और दृष्टि उसे जीवन्त बनाती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं - ''कला और साहित्य में सौन्दर्यबोध जहाँ संस्कारजन्य होता है, वहीं परिवेशगत भी। पसन्द-नापसन्द, जीवन-मूल्यों का आधार बनती है। दलित साहित्य सिर्फ एक साहित्यिक आन्दोलन भर नहीं है। दलित समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आकांक्षाएँ साहित्य की भाषा में व्यक्त हो रही हैं। इसीलिए वह हिन्दी की मुख्यधारा के उस सौन्दर्यशास्त्र के वर्चस्व से मुक्त है, जो संस्कृत के काव्यशास्त्र से जुड़ा है।''

साहित्य के सौंदर्यशास्त्र को लेकर मैनेजर पांडेय के विचार हैं– 'कोई भी सौन्दर्यशास्त्र एक दिन में नहीं बनता। प्रतिरोध और विकल्प का सौन्दर्यशास्त्र तो और भी नहीं। वैसे तो हिन्दी में कोई विकसित सौन्दर्यशास्त्र नहीं है, लेकिन जो है उसके पीछे एक ओर संस्कृत के काव्यशास्त्र की लम्बी परम्परा है तो दूसरी ओर पश्चिम के सौन्दर्यशास्त्र का प्रभाव। स्वयं पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्र का विकास कई सदियों में हुआ है। जो लोग कहते हैं कि सौन्दर्यशास्त्र का जाति, वर्ग और विचारधारा से क्या लेना-देना, वे या तो बेवकूफ हैं या बदमाश। सौन्दर्यशास्त्र कला की अलौकिक अनुभूति नहीं है। वह कलात्मक सौन्दर्य के बोध और मूल्यों का शास्त्र है, और बोध की प्रक्रिया तथा मूल्यों के निर्माण में जाति, वर्ग और लिंग से जुड़ी विचारधाराओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसीलिए दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का विकास दलित समाज, उसकी चेतना, संस्कृति, विचारधारा और दलित सौन्दर्यशास्त्र के विकास पर निर्भर है, जो एक लम्बी प्रक्रिया में होगा।' अतः दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र में मनुष्यता विरोधी गतिविधियों का प्रत्याख्यान करने की चेतना, सामाजिक न्याय की अपेक्षा, शोषण के खिलाफ प्रतिरोध के स्वर और प्रगतिशीलता के तत्व विशेष महत्व रखते हैं।

20.5 सुशीला टाकभौरे और 'सिलिया'

'सिलिया' - प्रेमचन्द की कथा नायिका 'सिलिया' से भिन्न सुशीला टाकभौरे की कथा सृजन का प्रमाणित आख्यान है जो अनुभव की भट्ठी पर तैयार की गयी है। इसमें दलित जीवन की पीड़ा है, क्षोभ है, तिरस्कार की आँच है, कटुता और आक्रामकता है, जीजीविषा है तो सीधा तर्क भी है और आत्मगर्वोक्ति भी। सिलिया कहती है - ''फिर दूसरों की दया पर सम्मान ? अपने निजत्व को खोकर दूसरे के शतरंज का मोहरा बन जाना, वैसाखियों पर चलते हुए जीना-नहीं कभी नहीं !'' सिलिया सोचती - ''क्या हम इतने भी लाचार है, आत्मसम्मान रहित हैं, हमारा अपना भी तो कुछ अहं भाव है।''

ओम प्रकाश वाल्मीकि 'सिलिया' के बारे में कहते हैं- ''सुशीला टाकभौरे की कहानी सिलिया की मुख्य पात्र सिलिया को जो बड़ी कठिनाई से मैट्रिक पास करती है कोई भी लालच रास्ते से भटका नहीं पाता है, सुदृढ़ और पक्के इरादों वाली सिलिया ने जिस प्रकार सामाजिक उत्पीड़न सहे हैं वे सभी उसकी स्मृति में ताजा है। तमाम असुविधाओं के बीच भी वह सम्मान से जीना चाहती है यह संकल्प उसे लड़ने का हौसला देता है। यह एक अन्तर्मुखी कहानी है जो सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखी गयी है। (दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृष्ठ-115)

'सिलिया' छोटी किन्तु गहरे घाव कर देने वाली कहानी है जो हजारों वर्षों से एक वर्ग विशेष की यातना के प्रतिरोध और प्रतिकार के रूप में सामने आती है। छोटी उम्र की सिलिया के अबोध मन को समाज की विद्रूपता का सच झकझोर देता है और उसे आत्म चित्कार करने पर मजबूर कर देता है। यह कहानी दलित पीड़ा की मूक अभिव्यक्ति है। वह जितना अधिक बाहर प्रकाशित होती है, उससे अधिक अर्थ-संकेत छोड़ जाती है।

दलित स्त्री की पीड़ा और संत्रास के इतने सारे चित्र इस कहानी में आते हैं कि पाठक की आत्मा उसे झकझोर देती है और वह अपने में सिलिया का अनुभव करने लगता है। यह अनुभव लोक उसे यथार्थ की भावभूमि में ले जाता है जहाँ इस वर्ग की निराशा और हताशा उसे प्रश्नों के खण्डहर में छोड़ देती है। सिलिया मालती द्वारा अपने से ऊँचे वर्ग की बाल्टी से प्यास लगने पर पानी पीने के संदर्भ को इस तर्क से उजागर किया है - 'सिलिया' का स्वभाव चिन्तनशील बनता जा रहा था। परम्परा से अलग नये-नये विचार उसके मन में आते। वह सोचती - ''आखिर मालती ने कौन सा जुर्म किया था-प्यास लगी पानी निकाल कर पी लिया।''

हजारों वर्षों से अभिशप्त होने का जो बोध 'सिलिया' के चेतना पर पड़ा था जिससे वह अपने को मनुष्य मानने में भी कठिनाई का अनुभव कर रही थी। उसका अहं जाति व्यवस्था की बलि चढ़ चुका था। अपने से बड़े जाति-समुदाय में पहुँचते ही वह अपने स्वत्व को खो देती है। किन्तु अलग होते ही उसका आत्मसम्मान और आत्म-स्वाभिमान प्रश्नों की झड़ी लगा देता है। सिलिया जब हेमलता के बहन के यहाँ जाती है तब जाति दंश की पीड़ा उसे पानी से महरूम कर देती है। हेमलता की मौसी उससे पूछती है उसके मामा-मामी गाडरी मुहल्ले में रहते ? सिलिया के स्वीकारोक्ति के बाद पीने के लिए लाया पानी का गिलास वापस लेकर चली जाती है। ''सिलिया को प्यास लगी थी परन्तु वह मौसी जी से पानी माँगने की हिम्मत न कर सकी''। यह हिम्मत का टूटना-हजारों वर्षों से उसके आत्मसम्मान, जाति व्यवस्था के बोझ तले दबकर मनुष्यता का टूटना है। इसी को दूसरे सन्दर्भ में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अपनी 'तोड़ती पत्थर' में कहते हैं - ''देखकर कोई नहीं/देखा मुझे उस दृष्टि से/जो मार खा रोई नहीं।'' क्योंकि सिलिया के बहाने सुशीला टाकभौरे उसकी व्याख्या करती है। ''सिलिया रास्ते भर कुढ़ती आ रही थी। आखिर उसे प्यास लगी थी तो उसने मौसी जी से पानी क्यों नहीं माँगकर पिया। तब मौसी के चेहरे पर एक क्षण के लिए आया भाव उसकी नजरों में तैर गया। कितना मुखौटा चढ़ाए रहते हैं ये लोग । मौसी जी जानती थी कि उसे प्यास लगी है, पर जाति का नाम सुनकर पानी का गिलास लौटा ले गयी।'' आगे सिलिया मानवीय संवेदना को कठघरे में खड़ा करते हुए सवाल करती है- ''क्या वे पानी माँगने पर इन्कार कर देती?' यह प्रश्न सन्' 60 के लिए तो यक्ष प्रश्न थे जिसके उत्तर सवर्ण मानसिकता के शब्द कोश में नहीं थे। समय के साथ इन प्रश्नों ने अपने रूप बदल लिए हैं। अधिक सूक्ष्म और संश्लिष्ट हो चले है।

20.6 'सिलिया' : दलित नारी चेतना की अभिव्यक्ति

'सिलिया' वर्णव्यवस्था और जाति व्यवस्था की कोख से उपजा या कहें कि अस्पृश्यता की दारूण वेदना की कहानी तो है अपितु उससे एक कदम आगे बढ़कर दलित विवशताओं के बीच नारी चेतना की अभिव्यक्ति है। जिसमें उसके दुःख है, यातना है, पीड़ा है, आस्था है, आकांक्षा है तो विद्रोह की आग भी है। अर्थात् यह कहानी सच्चे अर्थों में दलित जीवन के आवेग पूर्ण अनुभवों की अभिव्यक्ति है। सुशीला टाकभौरे दलित महिला पर लिखित अपनी एक कविता में कहती है - ''तुम्हें क्यों शर्म नहीं आई ? आग का दरिया बन जायेगी/उसके तेवर पहचानों/संभालों पुराने जेवर। थान के थान परिधान/नंगेपन पर उतरकर/पुरूष के सर्वस्व को नकार कर/नीचा दिखायेगी।''

इस तेवर की पहचान 'सिलिया' कहानी में बार-बार पड़ता है। सिलिया विचार करती है- ''फिर दूसरों की दया पर सम्मान ? अपने निजत्व को खोकर दूसरे के शतरंज का मोहरा बन जाना, बैसाखियों पर चलते हुए जीना नहीं कभी नहीं। यह प्रश्न जितना जाति

व्यवस्था पर लागू होता है उतना ही लिंग व्यवस्था पर भी। सेट्ठी जी ऊँचे वर्ग जाति से तो हैं ही, साथ ही साथ यह नहीं भूलना चाहिए कि वे पुरुष भी है। यह आक्रोश जाति व्यवस्था के साथ पुरुष मानसिकता पर भी कुठाराघात है। पूरी कहानी समाज व्यवस्था के हर तन्तुओं को झकझोरती है, अर्थ व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करती है तो धर्म और आस्था को प्रश्नांकित भी करती है। इन्हीं दग्ध-भाव-चेतना की उपज है सिलिया का आत्मस्वाभिमान, जहाँ वह सोचती हैं - ''क्या हम इतने लाचार है, आत्मसम्मान रहित है, हमारा अपना भी तो कोई अहं भाव है। उन्हें हमारी जरूरत है हमको उनकी जरूरत नहीं। हम उनके भरोसे क्यों रहे।''

'सिलिया' कहानी में नारी चेतना का प्रश्न कुछ ज्यादा ही सूक्ष्मतर रूप में उलझा हुआ है जहाँ वह पूरा आकार ग्रहण नहीं कर पाता। किन्तु कथा सूत्रों की पेचीदगियों में, वाक्य संरचनाओं में सुशीला टाकभौरे ने संश्लिष्ठता के साथ पिरोया है। एक तरफ सिलिया बार-बार पढ़ लिखकर बड़े होने की बात करती है। आत्मनिर्भर होकर आत्मसम्मान से जीना चाहती है। यथा-''पढ़ाई करूँगी, पढ़ती रहूँगी, शिक्षा के साथ अपने व्यक्तित्व को भी बड़ा बनाऊँगी।'' यह आत्म निर्भरता जितनी दलित विमर्श में है प्रायः उतनी ही स्त्री विमर्श में भी। वेदना, नकार और विद्रोह यदि दलित विमर्श की आत्मा है, तो स्त्री चेतना की भी। कहानी में अन्तिम पड़ाव पर सिलिया द्वारा शादी न करने की घोषणा पाठक का ध्यान खींच ले जाती है। जब वह कहती है ''विधा, बुद्धि और विवेक से अपने आपको ऊँचा सिद्ध करके रहूँगी। किसी के सामने झुकूँगी नहीं। न ही अपमान सहूँगी।'' यह कहने में कहीं अवरोध नहीं कि यह दलित चिन्तन का आवेग पूर्ण आख्यान है किन्तु जब आगे वह कहती है - ''मैं शादी कभी नहीं करूँगी'' यह आक्रोश नारी चेतना से भी उसी रूप में जुड़ जाता है और विद्रोह की आग को भड़काता है। यह केवल सिलिया की घोषणा नहीं अपितु सम्पूर्ण नारी मात्र की घोषणा हो जाती है। यह नहीं भूलना चाहिए कि पूरी कहानी में सिलिया का स्वाभाविक नारी मन क्रूर समाज व्यवस्था की भेंट चढ़ जाता है और उसे समय से पहले सयानी होने पर मजबूर कर देता है।

20.7 दलित सौन्दर्यशास्त्र और 'सिलिया'

डॉ0.अम्बेडकर के विचार दर्शन से आधार लेकर दलित साहित्य में 'स्वानुभूति' की जो चेतना बलवती हुई उसने साहित्य में एक नवीन ऊर्जा पैदा की है। दलित उसने पारम्परिक और स्थापित साहित्य को आत्मविश्लेषण के लिए बाध्य किया। आनन्दवादी सौन्दर्य के नकार, विद्रोह और अनुभव प्रस्तुत वेदनायुक्त सौन्दर्य के सृजन ने स्थापित मूल्यों में संशोधन और परिवर्द्धन की चेष्टा की। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं - ''कला और साहित्य में सौन्दर्यबोध जहाँ संस्कारजन्य होता है वहीं परिवेशगत भी। पसन्द-नापसन्द जीवन मूल्यों का आधार बनती है। दलित साहित्य सिर्फ एक साहित्यिक आन्दोलन भर नहीं है। दलित समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आकांक्षाएँ साहित्य की भाषा में व्यक्त हो रही है। इसीलिए वह हिन्दी के मुख्य धारा के उस सौन्दर्यशास्त्र के वर्चस्व से मुक्त है जो संस्कृत के काव्यशास्त्र से जुड़ा है।'' अर्थात दलित साहित्य ने रूप, रस, गंध, भाव, भाषा पर अपनी छाप छोड़ी है। सुशीला टाकभौर की 'सिलिया' कहानी में भी नकार, विद्रोह और नये सौदर्यशास्त्र के मूल्य प्रस्तुत हैं।

'सिलिया' दलित चेतना के उभार की आरम्भिक रचनाओं में एक महत्वपूर्ण कहानी है जो दलित नारी की वेदना और आक्रोश से साहित्य जगत को स्तब्ध करती है। कहानी की नायिका 'सिलिया' दलित वर्ग की एक प्रतीक के रूप में सामने आती है जो सेठी जी द्वारा अछूत कन्या से विवाह इस विज्ञापन पर विश्लेषण परक विचार व्यक्त करती है। ''सिलिया

का स्वभाव चिन्तनशील बनता जा रहा था। परम्परा से अलग नये-नये विचार उसके मन में आते।' वह सोचती-'आखिर मालती ने कौन सा जुर्म किया था-प्यास लगी पानी निकालकर पी लिया' फिर वह सोचती ''हेमलता की मौसी जी से वह पानी क्यों नहीं ले सकी थी' और अब यह विज्ञापन-उच्च वर्ग का नवयुवक, सामाजिक कार्यकर्ता जाति भेद मिटाने के लिए शूद्र वर्ण की अछूत कन्या से विवाह करेगा। यह सेठी जी महाशय का ढोंग है-आडम्बर है या सचमुच वे समाज की, परम्परा को बदलने वाले, सामाजिक क्रान्ति लाने वाले महापुरूष है ?'' यह केवल कहानीकार का नहीं अपितु हर दलित का प्रश्न है। वर्ण व्यवस्था के पैंतरे उनके जीवन को बार-बार उसी गहरी खाई में ढकेलते हैं जिसके कारण उनका विश्वास ही टूट चुका है। अविश्वास ने उनके साहित्य में तर्कों और प्रश्नों की वेबाक श्रृँखला निर्मित की है। सिलिया के ये प्रश्न इसके साक्षी है।

यह कहानी वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था के प्रतिरोध और प्रतिकार की कहानी है जो पाठक को झंकृत और सोचने पर मजबूर करती है। मालती द्वारा बकरी वाली के कुएँ से पानी पीने पर जिस अपमान और घुटन का एहसास मालती की माँ करती है उसका वर्णन है। यथा - ''क्यों वाई, जई सिखाओ तो अपने बच्चों को एक दिन हमारे मुँह पर मूतने को कह देना। तुम्हारे नजदीक रहते है तो का हमारा कोई धरम-करम नहीं ? का मरजी है तुम्हारी, साफ-साफ कह दो।'' इसी अपमान का प्रतिकार है कहानी के अन्त में सिलिया द्वारा शादी न करने की घोषणा। इसके फलस्वरूप उसके नानी का कथन है-''शादी तो एक न एक दिन करना ही है बेटी, मगर इसके पहले तू खूब पढ़ाई कर ले, इतनी बड़ी बनना कि बड़ी जात के कहलाने वालों को अपने घर नौकर रख लेना।'' 'बड़ी बनना' यह सवर्ण होना नहीं अपितु कालमार्क्स के वर्ग संघर्ष के तरफ ही संकेत है।

सिलिया के जीवन के छोटे-छोटे उद्धरणों को जोड़कर सुशीला टाकभौरे ने कहानी कला की नयी इमारत खड़ी की है। पूर्व-दीप्ति शैली से लिखित छोटे संवाद पाठक को विचार करने पर विवश कर देते हैं। सादगी के साथ बेलौस भाषा पाठक को झकझोरती रहती है। दृश्यात्मक चित्र कहानी को मजबूती प्रदान करते हैं। कहीं पाठक को अपराध बोध और आत्मग्लानि की भाव सरणि में ले जाते तो कहीं विवेकपूर्ण बौद्धिक व्यायाम करने पर विवश करते हैं। कहानी में कोई कथावाचक नहीं आता है। कहानी कथा-रस से विचार-रस की ओर पाठक को झुलाती रहती है किन्तु उसकी तन्द्रा भंग नहीं होने देती, यातना और वेदना के इतने आख्यान पैदा करती है कि वह कहानीपन में निमग्न रहे बिना नहीं रह सकता।

20.8 सारांश

'सिलिया' सुशीला टाकभौरे की एक महत्वपूर्ण कहानी है जो कहानी कला में नये मानदण्ड स्थापित करती है। एक तरफ दलित चेतना के विभिन्न चिन्तन आयामों को उद्‌घाटित करती हैं तो वहीं दूसरी तरफ नारी-विमर्श के विभिन्न आख्यानों से उसे जोड़ती भी हैं। सिलिया एक आत्मसम्मान से जीने और प्रतिरोध-प्रतिकार की प्रतिमूर्ति है जो दलित जीवन के सच को जानती है, भोगती है और क्रूर समाज-व्यवस्था से लड़ती भी है। सिलिया संघर्ष और यातना की पर्याय है। यह कहानी दलित संघर्ष की कहानी है। इसमें सुशीला टाकभौरे ने सिलिया के बहाने भारतीय समाज की जड़वादी मानसिकता को उभारा है।

वैश्वीकरण और भूमण्डलीकरण के दौर में दलित स्त्री- जीवन के नये संदर्भों को उजागर करती है। विरोध और संघर्ष से वर्षों की यातना के समुन्द्र में डूबे दलित आज अपने हक

की माँग कर रहे हैं तो साहित्य के झण्डाबरदार उसे नकारने पर तुले हैं, यह कहानी उन्हें भी प्रश्नांकित करती है। सच्चे अर्थों में यह दलित बालिका सिलिया के अन्तर्मन पर पड़े घाव और जख्मों को कुरेद-कुरेद कर उभारने और उसके आक्रोश को भाषिक रूप देने और तात्कालिक ज्वलन्त मुद्दों पर उनसे सवाल करने के साथ ही परम्परा के पुनर्मूल्यांकन की कहानी है जो कभी ब्राह्णवाद पर भारी पड़ती है तो कभी पुरुषवादी मानसिकता को कटघरे में खड़ा करती है।

20.9 अभ्यास

1. दलित कहानी के चिन्तन आलोक में 'सिलिया' कहानी की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।
2. 'सिलिया' दलित कहानी की नायिका तो है ही, साथ ही स्त्री चेतना की भी नायिका है। कथन को सप्रमाणित स्पष्ट कीजिए ?
3. सुशीला टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' दलित सौन्दर्यशास्त्र का नया मापदण्ड स्थापित करती है ? कथन को सोदाहरण प्रमाणित कीजिए ?
4. सिलिया-बाल मन पर दलित आक्रोश के चिन्तन और चिन्ता की कहानी है। सोदाहरण प्रमाणित कीजिए ?

इकाई 21 तलाश : विश्लेषण और मूल्यांकन

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 दलित कहानी की परम्परा

21.3 जयप्रकाश 'कर्दम': जीवनवृत्त एवं लेखन परिचय

21.4 'तलाश' कहानी की कथावस्तु

21.5 शीर्षक की सार्थकता

21.6 'तलाश' : आलोचना एवं विश्लेषण

21.7 भाषा-शैली

21.8 'तलाश': अनुभवात्मक संवेदना और सामाजिक यथार्थ

21.9 सारांश

21.10 अभ्यास

21.11 खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

21.0 उद्देश्य

मराठी भाषा में, दलित साहित्य का उदय गौतम बुद्ध, महात्मा फुले और डॉ. अम्बेडकर के विचार दर्शन एवं आंदोलनों के परिणाम स्वरूप हुआ। इस साहित्य का मुख्य केन्द्र दलित जीवन संघर्ष, यथार्थ, मनुष्य केन्द्रित जीवन संवेदनाएं, विद्रोह, वेदना आदि को क्रान्तिकारी अभिव्यक्ति प्रदान करना है। जयप्रकाश कर्दम महात्मा फुले, बुद्ध, और डॉ. अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित है। उन्होंने इन महानपुरुषों के विचार-दर्शन का गहराई से अध्ययन किया है, जिससे इनकी लेखन की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

शोषण मुक्त समाज निर्माण की दिशा में जिस तरह मार्क्सवादी दर्शन को स्वीकार किया जाता है, उसी तरह भारतीय समाज में, वर्णव्यवस्था व वर्णव्यवस्था की वैचारिकी का ज्ञान देने वाले डॉ. अम्बेडकर के विचार हैं। भारतीय समाज के जाति-वर्गीय ढांचे में बदलाव लाने के लिए मार्क्स-आंबेडकर के विचारों की नई सैद्धान्तिकी जयप्रकाश 'कर्दम' ने प्रस्तुत की है। नकार, विद्रोह, दुःख की अनुभूति, मनुष्य की महत्ता, ज्ञान विज्ञान के प्रति निष्ठा, करूणा, बंधुत्व, अनात्म, अनीश्वरवाद आदि मूल्यों का सृजन जयप्रकाश जी के लेखन में देखने को मिलता है।

दलित साहित्य ने परम्परागत सौन्दर्यशास्त्रीय मानदण्डों, मिथकों और कलावादी मान्यताओं को चुनौती दी और समय की मांग के अनुसार उनमें बदलाव किया और साहित्य में जनमानस के जीवन यथार्थ, जीवन संघर्ष, आत्मसम्मान और अस्मिता, मनुष्य की महत्ता और मानवतावाद के बीज साहित्य में बोये।

जयप्रकाश जी ने अपनी रचना-धर्मिता निभाते हुए समाज के यथार्थ पर से पर्दा उठाया है। उन्होंने जो पात्र अपनी कहानियों और उपन्यासों में प्रस्तुत किए है वे हमारे आस पास रोजमर्रा की जिंदगी में देखने को मिल जाएंगे। जिन लोगों के योगदान को रोज हम

अनदेखा कर देते हैं वही लोग दलित साहित्य के नायक और नायिका होते हैं। इनकी कहानियों ने दलितों की अस्मिता को जगाया। इस इकाई में भी हम दलितों की उन सब समस्याओं और मुद्दों के संदर्भ में 'तलाश' कहानी का अध्ययन करेंगे। इस कहानी को पढ़ने के पश्चात् आप परिचित होंगे/होंगी :

- भारतीय सामाजिक ढांचे में दलित जीवन के यथार्थ से;
- दलित कहानी की विशेषताओं से;
- दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्रीय तत्व वेदना और विद्रोह की अभिव्यक्ति से;
- दलित साहित्य में जयप्रकाश कर्दम के महत्त्वपूर्ण योगदान से;
- 'तलाश' कहानी के कथ्य और शिल्प से, एवं
- 'तलाश' कहानी की संवेदना और उसमें अभिव्यंजित सामाजिक यथार्थ से।

21.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत कहानी जयप्रकाश कर्दम जी की बहुचर्चित कहानी है। इस कहानी से हमें इस बात का आभास हो जाएगा कि किस प्रकार वर्ण व्यवस्था ने अस्मिता के सारे अधिकार दलितों से छीन रखे हैं और उन्हें मुख्य धारा नामक घेरे से बाहर धकेल दिया है, प्रगति के सारे मार्ग उनके लिए बंद कर दिए गए हैं।

दलित साहित्य में जन्मजात जातिगत पूर्वाग्रहों के विद्रोह का भाव है। जो कि 'तलाश' कहानी में भी देखने को मिलता है। समाज में धर्म के आधार पर जो मूल्य आधारित है उनमें बदलाव लाने की चेतना दलित साहित्य में दृष्टिगोचर है। इसीलिए लंबी दासता से भरे जीवन की अमानवीय स्थितियों से मुक्त होने की बेचैनी दलित साहित्य में बखुबी देखी जा सकती है। 'तलाश' कहानी का मुख्य पात्र रामवीर इसका उदाहरण है।

समाज में व्याप्त असमानता और भेदभाव मुख्यधारा की अराजकता से पैदा हुए हैं जो निरंतर समाज को पतन की ओर धकेल रहे हैं। दलित आलोचकों के अनुसार साहित्य सिर्फ आनंद, धन, या फिर नाम कमाने के लिए नहीं रचा जाना चाहिए अपितु उसमें मानव के विकास, सरोकार, उसकी चिंताएं आदि को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। जैसा कि कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, लेकिन साहित्य यदि समाज में प्रचलित कुरितियों, संघर्ष आदि को रेखांकित नहीं करता है तो वह केवल अजायबघर में रखने की वस्तु मात्र रह जाता है। साहित्य को सामाजिक जीवन का हिस्सा अवश्य बनना चाहिए। साहित्य को जमीनी सच्चाईयों से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

साहित्य जब समाज को अनदेखा करके अपना बौद्धक राग अलापता है तो वह समाज में चल रही क्रिया-प्रतिक्रियाओं से भी आंखे चुरा लेता है। ऐसा साहित्य ऐसे कबूतर की तरह होता है जो बिल्ली के आने पर आंखे बंद कर लेता है ताकि बिल्ली उसको न देख पाये परंतु वह इस बात को भूल जाता है कि उसके न देखने से बिल्ली उसपर हमला करना नहीं छोड़ेगी, अंततः वह बिल्ली का शिकार हो जाता है। यही कारण है कि सभी रसों और शिल्प के हिंदी साहित्य में रीतिकाल, छायावाद आदि अप्रासंगिक हो जाते हैं। क्योंकि इस काल के रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दशाओं से कटे से नजर आते हैं। अपने आस पास घट रही बड़ी से बड़ी घटनाओं से उनका कोई लेना देना नहीं है। साहित्य का काम लोगों की सोई हुई चेतना को जगाना होता है।

'तलाश' कहानी का मुख्य उद्देश्य सामाजिक जीवन, दलितों के उत्पीड़न, शोषण तथा गुलामी के बंधनो से मुक्ति की आकांक्षा है। इस कहानी में रामवीर अपने आसपास फैली भेदभाव की दुनिया में सकारात्मक बदलाव लाना चाहता है। बदलाव की जो भावना रामवीर के जेहन में पनप रही है वह अकारण ही नहीं है अपितु समाज में व्याप्त मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों और समाज में स्थित जातीय शोषण ने उसे मजबूर किया है कि सदियों से चली आ रही अमानवीय प्रथाओं में बदलाव लाया जाए।

21.2 दलित कहानी की परम्परा

हिन्दी दलित साहित्य की प्रेरणा संत कबीर, संत रैदास, दादू, पीपा, रविदास आदि संतो के नाम से जुड़ी हुई है। आमतौर पर आधुनिक दलित साहित्य की शुरूआत मराठी भाषा में रचित साहित्य से मानी जाती है जिसकी प्रेरणा की पृष्ठभूमि में संत कवि नामदेव, चोखामेला, ज्ञानेश्वर, समर्थ रामदास, तुकाराम, एकनाथ आदि हैं।

आधुनिक दलित साहित्य आंदोलन ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले और डॉ. अम्बेडकर द्वारा चलाए गए सशक्त सामाजिक आंदोलन के परिणाम स्वरूप उभरा है। इन आंदोलनों की जबरदस्त अभिव्यक्ति के रूप में भारतीय साहित्य के दृश्यपटल पर दलित साहित्य उपस्थित हुआ और सतह पर दिखाई पड़ने लगा। जल्द ही इसका प्रभाव हिन्दी भाषा पर भी पड़ा। आज वर्तमान हिन्दी साहित्य में दलित लेखन के उभार और उसके निरंतर विकास से इंकार नहीं किया जा सकता।

आधुनिक दलित साहित्य की शरूआत आत्मकथा एवं काव्य से शुरू हुई और धिरे-धिरे अन्य विधाओं का विकास हुआ। हिंदी दलित कहानिकारों में प्रमुख नाम सूरज पाल चौहान (हैरी कब आयेगा), मोहनदास नैमिशराय (आवाजें), ओमप्रकाश वाल्मीकी ('पच्चीस चौका डेढ सौ', 'सलाम, 'शव यात्रा', 'यह अंत नही'), लक्ष्मण माने, बाबुराव बागुल, शरणकुमार लिंबाले, लक्ष्मण गायकवाड़, प्रहलाद चंद दास(पुटूस के फूल) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन कहानियों में बेबस, मेहनतकश, शोषित-पीड़ित और दलित की करूण चीखें अभिव्यक्ति पाती हैं। इनमें दलितों के तमाम कष्टों, यातनाओं, प्रताड़नाओं, उपेक्षाओं को भोगे हुए यथार्थ के आधार पर मार्मिक एवं प्रामाणिक अभिव्यक्ति मिली है।

21.3 जयप्रकाश कर्दम : जीवनवृत्त एवं लेखन परिचय

जयप्रकाश कर्दम जी हिन्दी दलित साहित्य में एक जाना माना नाम है। जयप्रकाश 'कर्दम' का जन्म उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद जिले में एक बहुत ही गरीब परिवार में हुआ। उन्होंने अपने जीवन के शुरूआती दिनों में बतौर मजदूर काम किया। चाहे वह फैक्टरी हो या फिर कोई निर्माण कार्य जयप्रकाश जी ने इन सभी जगहों पर मजदूरी की और मेहनत क्या होती है और एक गरीब इंसान का दर्द क्या होता है की आत्मानुभूति की। परन्तु अपनी मेहनत और लगन के दम पर सभी कठिनाइयों और रूकावटों को पिछे छोड़ते हुए अपने जीवन में कामयाबी हासिल की। उन्होंने अपनी काबलियत के बलबूते पर विभिन्न विभागों में सेवाएं प्रदान की जैसे की राज्य सरकार, बैंकिंग सेवाएं, केन्द्रीय राजभाषा सचिवालय, भारत सरकार इत्यादि। इन दिनों जयप्रकाश जी मॉरिशश के उच्च आयुक्तालय में सेकंड सैक्रेट्री के तौर पर काम कर रहे हैं। इतना ही नहीं उच्च पदों पर काम करने के बाद भी उन्होंने गरीबों का साथ नहीं छोड़ा है और निरंतर उनके हित में

लेखन कार्य कर रहे हैं और समाज में व्याप्त भेदभाव की लड़ाई से लोहा ले रहे हैं। वे 1999 से 'दलित साहित्य वार्षिकी' पत्रिका का संपादन भी कर रहे हैं।

प्रस्तुत कहानी जयप्रकाश 'कर्दम' जी की आत्मकथात्मक कहानी है जिसे कि रामवीर के पात्र के रूप में तराशा गया है। रामवीर को जिस प्रकार मकान को लेकर नाना प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ा उसी प्रकार जयप्रकाश जी को भी जीवन के किसी मोड़ पर इस प्रकार के भेदभाव और समस्याओं का सामना करना पड़ा। यह कहानी उनके तजूरबों पर आधारित है।

21.4 'तलाश' कहानी की कथावस्तु

'तलाश' कहानी का प्रारम्भ रामवीर की मकान की तलाश से शरू होता है। रामवीर एक व्यापार कर अधिकारी है। पिछले एक सप्ताह से वह गेस्ट हाउस में ठहरा हुआ है। चूंकी गेस्ट हाउस की अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं। वहां एक लम्बे समय तक ठहरना संभव नहीं होता। ऐसी अवस्था में रामवीर ने तय किया कि वह एक किराए का मकान तलाश लेगा और इतमिनान से अपने लेखन कार्य पर ध्यान केन्द्रीत करेगा। और यहां से रामवीर की एक किराए के मकान की तलाश शुरू होती है। वह कई मकान देखता है कुछ मकान उसको पसंद नहीं आते और कुछ के मालिकों की शर्तें उसे स्वीकार्य नहीं होती। काफी मशक्कत के बाद रामवीर को एक मकान पसंद आता है जो उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल है। यह मकान किसी गुप्ता का है। गुप्ता भी अन्य मकान मालिकों की तरह रामवीर से उसके बारें में जानकारी लेता है। और जब उसे पता चलता है कि रामवीर एक व्यापार कर अधिकारी है तो तुरंत मकान किराए पर देने के लिए तैयार हो जाता है। और इस तरह रामवीर भी राहत की सांस लेता है।

कहानी के मध्य में रामवीर को जिस भयानक समस्या का सामना करना पड़ता है, उससे अवगत कराया गया है। रामवीर रामबती को साफ सफाई के लिए लगाता है। उसके काम से खुश होकर रामवीर उसे खाना पकाने का कार्यभार भी सौंप देता है। लेकिन बात यहीं पर खत्म नहीं हो जाती। गुप्ता की बीवी जो कि कर्मकांड़ में अधिक विश्वास रखती है उसे रामबती के घर में प्रवेश से आपत्ति है। और इसका मुख्य कारण है कि रामबती दलित है। यदि वह घर कि वस्तुओं को छुएगी तो संपूर्ण घर अशुद्ध हो जाएगा। इस बारे में गुप्ता की बीवी गुप्ता के कान भरती है। परिणाम स्वरूप गुप्ता रामवीर से रामबती को काम से हटाने को कहता है।

किन्तु रामवीर जो कि एक तर्कशील व्यक्ति है गुप्ता को समझाने की कोशिश करता है कि सभी इंसान संविधान के सम्मुख बराबर हैं और जाति-पाति से कोई छोटा या बड़ा नहीं होता। किन्तु गुप्ता के उपर इन बातों का कोई असर नहीं पड़ता है और वह शर्त रख देता है कि या तो रामबती को काम से हटा दो नहीं तो कमरा खाली कर दो।

कहानी के अन्त में रामवीर गुप्ता की बात न मानकर कमरा खाली करने को तैयार हो जाता है और उस दिन वह काम पर न जाकर दूसरे मकान की तलाश में जुट जाता है।

इस कहानी के माध्यम से हमें इस बात की अनुभूति होती है कि रोजगार की तलाश में इंसान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ता है तथा नए स्थान पर तबादला हो जाने से कुछ न कुछ कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। घर इंसान की एक मूलभूत आवश्यकता है। इस कहानी में रामवीर भी एक ऐसे मकान की तलाश में है जो उसकी आवश्यकताओं के अनुसार हो और जहां का माहौल शांतिमय हो।

21.5 शीर्षक की सार्थकता

इस कहानी का शीर्षक बहुत ही सटीक एवं उपयुक्त है। तलाश एक प्रतिकात्मक शीर्षक है जो कि रामवीर की मनोवैज्ञानिक तलाश को प्रतिबिम्बित करता है। इसके अलावा इस पूरी कहानी से यही स्पष्ट होता है कि रामवीर की जो समानता की तलाश है, वह निरंतर जारी है। इस प्रकार लेखक जयप्रकाश कर्दम जी इस बात पर भी प्रकाश डालना चाहते हैं कि दलित संघर्ष की समाप्ति अभी निकट भविष्य में समाप्त होती प्रतित नहीं होती। इस पूरी कहानी से यही आभास होता है कि यह संघर्ष अभी यूंही चलता रहेगा। इस की समाप्ति के लिए जनचेतना, शिक्षा व निरंतर संघर्ष की बहुत आवश्यकता है।

21.6 'तलाश': आलोचना एवं विश्लेषण

कोई भी कहानी साहित्य का हिस्सा होती है और इस बात में कोई दो राय नहीं है कि साहित्य की किसी भी विधा की एक व्याख्या देना अन्याय सिद्ध होता है। इसी प्रकार किसी भी कहानी को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जाए तो निश्चित रूप से ही अलग-अलग व्याख्याएं निकल कर सामने आने लगती है। एक ही कहानी को विभिन्न संदर्भो में पढ़ा जा सकता है।

यदि हम 'तलाश' कहानी के संदर्भ में बात करें तो यह कहानी अन्य कहानियों की भांति सरल एवं सामान्य कहानी नजर आती है। जो इसके नायक की दिक्कत को पाठक के सामने रखती है कि किस प्रकार रामवीर को एक नए शहर में किराए के मकान के लिए परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

परन्तु इसी कहानी को यदि दलित विमर्श के नजरिए से देखा जाए या समझा जाए तो यह कहानी एक गहन समस्या का ज्वालामुखी अपने अंदर समेटे हुए है। इस कहानी में दलित होने का जो अभिशाप है उसको बहुत ही मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है। पूरी कहानी में भेदभाव की दृष्टि व्याप्त है। दलित होने की जो बीमारी है उसका कोई इलाज इस समाज में नजर नहीं आता। कहा जाता है कि शिक्षा इंसान को जाति पाति के भेदभाव से उपर उठा देती है। इस कहानी में 'जूठन' आत्मकथा की झलक भी नजर आती है। जिस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि के पिता कहते हैं कि बेटा पढ़-लिखकर अपनी जाति सुधार। उन्होंने भोलेपन में जो बात कही वह सही मायने में एक विवाद खड़ा करती है। रामवीर पढ़-लिखकर बड़ा अफसर बन गया है लेकिन क्या उसकी पढ़ाई और काबलियत उसके दलित होने के दाग को मिटा पाई यह कहानी एक बहुत बड़ा सवाल खड़ा करती है। भेदभाव का जो नासूर ज़हनों में गहरा गया है उसके लिए लोगों के दृष्टिकोण में बदलाव लाना अति आवश्यक है।

यह कहानी उस आजाद भारत की कहानी है जिसे आजाद हुए कई दशक हो चुके हैं लेकिन आज भी लोगों की मानसिकता जातिवाद की गुलाम नज़र आती है।

रामवीर बार-बार समतामूलक समाज और संविधान की बात करता है। उसके अनुसार सब बराबर हैं। वह कहता है हमारा संविधान, जिससे हमारा देश चलता है उसकी नज़र में सब बराबर हैं। कोई छोटा या बड़ा या छूत अछूत नहीं होता है। लेकिन गुप्ता जो कि तथाकथित 'सवर्ण जाति' या 'उच्च वर्ग' का प्रतिनिधि है कुछ और ही मूल्यों का अनुसरण करता है। जब रामवीर रामबती के संदर्भ में गुप्ता की बात को खारिज़ करता है ''.... है तो क्या हुआ? है तो वह भी इंसान ही और फिर वह साफ शुद्ध रहती है।'' लेकिन इस

बात से गुप्ता को कोई फर्क नहीं पड़ता वह कहता है ''इंसान तो सब हैं साहब पर इंसान इंसान में भेद होता है। सब इंसान बराबर नहीं होते। हजारों साल से समाज में यह भेद बना हुआ है। समाज के बीच समाज के अनुसार चलता है।

गुप्ता ने यदि रामवीर को मकान दिया तो केवल यह जानकर की वह एक व्यापार कर अधिकारी है। इसमें गुप्ता का स्वार्थ निहित था परन्तु यदि उसे इस बात का आभास हो जाता कि रामवीर एक दलित है तो वह जरूर मकान देने से इंनकार कर देता। गुप्ता के हर दिन की शुरूआत मंदिर से होती है। चाहे तुफान आये या आंधी गुप्ता मंदिर में जाना नहीं छोड़ता। वह कहता है कि उसके मोहल्ले में सारे ब्राह्मण व बनिए रहते हैं जो धर्म कर्म से चलते हैं। लेकिन क्या गुप्ता का धर्म इंसान में भेद करना ही सिखाता है?

शहर आधुनिकता का प्रतिक होता है पर जैसा की कहानी में घटित होता है लोगों की सोच अब भी रूढिवादी है। तिरस्कार, भेदभाव, जातिवाद का जो जहर है वह अब भी यूंही समाज में फैला हुआ है। इसे खत्म करने के प्रयास निरन्तर होते रहने चाहिए अन्यथा यह समस्या और अधिक गहरा सकती है। लोगों ने आधुनिक रहन-सहन, खानपान, शिक्षा को तो अपना लिया लेकिन अपनी मानसिकता को नहीं बदला है। गुप्ता जो की इस कहानी का पात्र है अपने आपको सभ्य दिखाने का भरसक प्रयास करता है रोज मंदिर जाता है, पूजा पाठ करता है, तिलक लगवाता है किन्तु वह यह नहीं समझ पाया कि ''मन चंगा तो कठौती में गंगा''। जिस तरह कि सोच वह रखता है उसे केवल जंगली ही कहा जा सकता है सभ्य नहीं।

इस कहानी में प्रचलित रूढियों और परम्पराओं पर भी बहुत गहरा कटाक्ष किया गया है। वैज्ञानिक युग में जीने वाले लोग एक तरह से मानसिक संकिर्णता के शिकार है। समाज के रीति रीवाज लोगो द्वारा बनाए जाते हैं। हिन्दू धर्म कुछ न कुछ बुराइयों का शिकार रहा है। उसमें से भेदभाव की भावना भी एक है। सती प्रथा, समुद्र यात्रा आदि इसके उदाहरण हैं। इनके उपर तो काबू पा लिया गया परन्तु जातिवाद की जो समस्या है जस की तस बनी हुई है। 'तलाश' कहानी का उद्देश्य पाठक की सोच को बदलना है। गुप्ता कहता है, ''संविधान से देश चलता है साहब, समाज नहीं। समाज परम्पराओं से चलता है।'' लेकिन जब भी समाज में इन जैसे लोगों पर कोई अत्याचार होता है तो ये लोग कानून की शरण लेकर अपनी आजादी को कायम रखते हैं। अपने अधिकारों के लिए संविधान इनको नजर आता है और दूसरों के अधिकारों के लिए समाज के नियमों कि बात करते हैं। यह कहानी इस बात पर भी जोर देती है कि संविधान जो कि देश का सर्वोच्च कानून है और जो इसकी अवेहलना करता है उसे कड़ी से कड़ी सजा देनी चाहिए। रामवीर जो की एक शिक्षित व्यक्तित्व है यदि रामबती वाले मामले में कानून का सहारा लेता तो गुप्ता जी की अक्ल जरूर ठिकाने आ जाती। और दोबारा उसकी हिम्मत न होती की वह खुले तौर पर छूत-अछूत की बात करे।

यह कहानी इस बात को भी साबित करती है कि जिन दलितों को अवसरों से वंचित रखा जाता था अब जब उन्हें संविधान द्वारा समानता का अधिकार मिल गया है तो अपनी काबिलियत के दम पर रामवीर जैसे अधिकारी के रूप में समाज की सेवा कर रहे हैं। रामवीर एक शिक्षित एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। रामवीर हमेशा इस बात का समर्थक रहा है कि सभी इंसान बराबर हैं और जाति नाम की कोई चीज उसे छोटा या बड़ा नहीं बना सकती है।

दूसरी ओर गुप्ता और उसकी बीवी की सोच को प्रदर्शित किया गया है। धर्म, शांति और सद्भावना को बढावा देता है। लेकिन यहां तो गुप्ता परिवार के दिमाग में परत दर परत

भेदभाव भरा हुआ है। गुप्ता की बीवी कहती है ''अफसर है तो क्या हमारा धर्म बिगाड़ेगा वो। जरूरत पड़ने पर जिसके मुंह पर चांदी का जूता मारोगे वो ही काम कर देगा। फिर आर.वी. सिंह का मूत हाथ में लेने की क्या जरूरत है।''

रामवीर इस कहानी में तार्किक सोच का सूचक है और उस आंदोलन का प्रतिनिधी है जो इस समाज को भेदभाव के दलदल से निकालने के लिए अति आवश्यक है। इस कहानी में रामवीर, बार-बार गुप्ता को समझाने की कोशिश करता है कि ये जात-पात, ऊँच-नीच तो बहुत पुरानी बाते हो गयी हैं। हमें इनसे ऊपर उठकर सोचना चाहिए। किन्तु गुप्ता के धर्म के अनुसार रामबती चूहड़ी है और चूहड़ी के स्पर्श से गुप्ता का पूरा घर अपवित्र हो जाएगा।

रामवीर गुप्ता की बात न मानकर कमरा छोड़ने को तैयार हो जाता है। और उस दिन ऑफिस न जाकर दूसरे मकान की तलाश में निकल पड़ता है। अर्थात् वह भेदभाव के खिलाफ लड़ाई जारी रखेगा। रामवीर का कमरा छोड़ने का निर्णय गुप्ता की सोच पर करारा तमाचा है। यदि वह अपने स्वार्थ के लिए रामबती को काम से हटा देता तो शायद वह अपनी नजरों से गिर जाता। रामबीर जैसी इकाई मिलकर ही सैंकड़ा और हजार बनती हैं जो किसी समाज में बदलाव लाने के लिए प्रर्याप्त होती है।

जब तक गुप्ता को रामवीर के दलित होने का आभास नहीं था तब तक वह उससे गिड़गिड़ा कर बातें कर रहा था। परन्तु जब गुप्ता रामबती को काम से हटाने का आग्रह करता है और रामवीर दलील पर दलील दिए जाता है तो गुप्ता को विश्वास हो जाता है कि हो न हो रामवीर भी दलित है और इसीलिए रामबती का इस प्रकार पक्ष ले रहा है। और इस घटना के तुरंत बाद वह दो टूक जवाब दे देता है ''आप रामबती से ही खाना बनवाना चाहते हो तो आपको मकान खाली करना पड़ेगा।''

इस कहानी में रामवीर एक दलित के रूप में और रामबती एक अति दलित के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। रामवीर व्यापार कर अधिकारी है इसलिए बावजूद इसके की वह एक दलित है गुप्ता जैसे लोग उससे डरते हैं और अदब से बात करते हैं। रामबती जैसे अति दलित को समाज के निम्नतर पायदान पर धकेल दिया गया है। यह वह दलित वर्ग है जिसके छू लेने मात्र से गुप्ता जैसे पाखंड़ियों का धर्म डोल जाता है और बिना नहाए उनका पुनः संतुलन स्थापित नहीं होता। यह भी विडंबना है कि जिस प्रकार का सामाजिक श्रम भंगी समाज करता है, उसका मूल्य जितना समाज को देना चाहिए नहीं देता है। बजाए इसके कि उसको सम्मान दिया जाए उसे केवल ठोकरें ही मिलती हैं।

भारतीय उच्च वर्ग इंग्लैंड़ में जाकर या अमेरिका में जाकर 'गटर सफाई' का काम स्वेच्छा से कर लेते हैं क्योंकि वहां ऐसे श्रम का मूल्य अर्थात वेतन बहुत अधिक मिलता है। लेकिन यह भारत ही ऐसा महान देश है, जो सफाई व शुचिता पर सर्वाधिक पाखण्ड करता है, लेकिन यहां के सफाई कर्मचारियों को इतना वेतन देने को तैयार नहीं कि वे अपना जीवन मानवीय सम्मान के साथ जी सकें।

गुप्ता की बीवी जिस पवित्रता की बात करती है क्या वह सत्तो और रामबती जैसी औरतों के बिना संभव है। ये लोग धरती के नरक की हर रोज सफाई करते हैं। कायदे से इन लोगों का सत्कार किया जाना चाहिए किन्तु बदले में इन्हें मिलता है छूआछात का व्यवहार दुर्र-दुर्र कर हटाने का अपमान। यदि ये लोग एक दिन की हड़ताल कर दें तो निश्चित रूप से ही शहर में महामारी फैल जाएगी और धर्म के नाम पर भेदभाव करने वाले लोगों को कोई देवी या देवता या फिर भगवान बचाने नहीं आएगा।

जयप्रकाश जी इस बात पर भी प्रकाश डालना चाहते हैं कि दलित समुदाय बृहत्तर समाज का अंग है व बृहत्तर समाज यदि दलित समुदाय के दुख सुख से अपरिचित है तो इसे साहित्य या अन्य माध्यमों द्वारा परिचित होना चाहिए और दलितों की मानवीय अस्मिता के प्रति बृहत्तर समाज की संवेदना जागृत होनी चाहिए जिसमें दलित साहित्य की बात हो सकती है।

इस कहानी में जयप्रकाश कर्दम जी की आत्मानूभूति या अपनी भोगी पीड़ा रामवीर और रामबती के किरदार में साफ झलकती है। जबकि गैर-दलित लेखकों की रचनात्मकता में दलित समुदाय के प्रति केवल सहानुभूति (कई बार वह भी छलपूर्ण होती है)।

गुप्ता इंसानियत से ज्यादा जन्म व आनुवांशिकता पर विश्वास रखता है। लेखक ने यह वैज्ञानिक सवाल भी खड़ा किया है कि जब हम आधुनिक ज्ञान-विज्ञान द्वारा आलोकित इस तर्क, तथ्य व सच्चाई को मानते हैं कि मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में आनुवांशिकता का कम और सामाजिक पर्यावरण व शिक्षा-दिक्षा का योगदान ज्यादा है तो इसी तर्क से इस बात को भी मानना होगा कि मनुष्य का जन्म कहां होगा, यह तो उसके वश में नहीं है, लेकिन जीवन में अपने व्यक्तित्व की दिशा अपनी चेतना के सहारे निर्धारित करना तो काफी हद तक उसके वश में है। यदि बुद्ध का यह संदेश सच है कि 'अप दीपो भव' और यदि बुद्ध स्वयं राजपरिवार में जन्म लेकर भी जीवन के सुखों को छोड़कर मानव की मुक्ति के मार्ग पर चले और मानवता के आदर्श बने तो आधुनिक काल में ज्ञान-विज्ञान व मानवीय चेतना के विकास के संदर्भ में इस बात की संभावना और भी बढ़ जाती है। इसे प्रबुद्ध व मानवतावदी चेतना से अनुप्राणित लेखक स्वयं उत्पीड़ित न होकर भी उत्पीड़ितों से स्वयं को जोड़ें।

21.7 भाषा-शैली

जयप्रकाश कर्दम जी की भाषा शैली अन्य दलित लेखकों से भिन्न नजर आती है। इनकी भाषा बहुत ही सहज एवं सटीक है। जिस तरीके से नदी की सतह पर पानी का बहाव कुछ धीमा नजर आता है परन्तु गहराई में एक तूफान होता है। उसी प्रकार कर्दम जी ने शिल्प के स्तर पर नया प्रयोग करके भाषा को विस्फोटक आक्रोश से बचाया है। अन्य दलित लेखकों ने जो ग्राम्य भाषा के रूप में गालियों का प्रयोग किया है वह बेवजह नहीं है अपितु जो तिरस्कार की पीड़ा व दंश दलितों ने अपने जीवन में सहन किया है उसके लिए यदि गालियों से बढ़कर भी कोई उच्चारण होता तो भी अपर्याप्त होता। इस कहानी में केवल एक जगह इस प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है जब गुप्ता की बीवी कहती है ''अफसर है तो क्या हमारा धर्म बिगाड़ेगा वो। जरूरत पड़ने पर जिसके मुँह पर चाँदी का जूता मारोगे वो ही काम कर देगा। फिर आर. वी. सिंह का मूत हाथ में लेने की क्या जरूरत है।'' गुप्ता की बीवी के मुँह से ये शब्द अनायास ही नहीं निकल रहे हैं, बल्कि उसके अंदर जो भेदभाव कूटकूट कर भरा है वह उसको इस तरह की बातें करने को मजबूर कर रहा है।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि तलाश जो कहानी है वह केवल रामवीर, रामबती या गुप्ता की कहानी नहीं अपितु पूरे समाज की कहानी है। लेखक ने इन पात्रों के माध्यम से समाज में व्याप्त भेदभाव को पाठक के समक्ष रखने की कोशिश की है। क्योंकि यदि कोई आशा की किरण नजर आती है तो वह केवल शिक्षित वर्ग में आती है। इस प्रकार की कहानियों एवं रचनाओं के माध्यम से ही सच को उजागर किया जा सकता

है। जिस आजाद भारत का सपना हमारे देशभक्तों और महापुरुषों ने देखा था वह भेदभाव को समाप्त किए बगैर साकार नहीं हो सकता है।

21.8 'तलाश' : अनुभवात्मक संवेदना और सामाजिक यथार्थ

दलित साहित्य की मुख्य विशेषता जीवन के अनुभव को अभिव्यक्ति प्रदान करना है। इसमें रचनाकार अपने तथा अपने आसपास के जीवन के अनुभवों, सामाजिक व्यवहार और जीवन में घटित घटनाओं को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। दलित साहित्यकारों ने उन सामाजिक आयामों को रचना में जगह दी है जो साहित्य ने अनदेखे कर दिए। उदाहरण के रूप में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक पहलू। यदि साहित्य इन सब बिन्दुओं को अपने में प्रतिबिम्बित नहीं करता है तो वो अपने उद्देश्य से मुह मोड़ लेता है। 'तलाश' कहानी जयप्रकाश कर्दम जी के अनुभवों पर आधारित है। इस कहानी में उन्होंने अपने साथ बीती घटित घटनाओं, प्रसंगों और समाज में प्रचलित जाति आधारित भेदभाव और प्रताड़ना को जगह दी है। भारतीय समाज की जातीय आधारित संरचना दलित के शोषण का मुख्य कारण है। इस समाज में उपस्थित भेदभाव के कारण एक दलित अमानवीय जीवन जीने को मजबूर हो जाता है। जैसे की पहले भी बताया जा चुका है कि जयप्रकाश जी की रोजगार यात्रा बहुत लम्बी रही है। उनकों तबादलों के दौरान एक शहर से दूसरे शहर अलग-अलग स्थान पर जाना पड़ता था। उनकों एक दलित होने के नाते किराए के मकान तलाशने में जिन असुविधाओं का सामना करना पड़ा उसका लेखा जोखा उन्होंने इस कहानी में दिया है। जिस तरह दलितों को किसी नई जगह जाने पर रहने के लिए स्वर्ण उच्चवर्गीय लोग अपने मुहल्लों में किराए पर मकान नहीं देते उसी प्रकार के अनुभव जयप्रकाश जी को भी कई स्थानों पर मिले। उन्हें रहने के लिए मकान नहीं मिला। उनसे स्वर्णों द्वारा बार बार जाति पूछी गई। दलित बिरादरी की जानकारी मिलते ही उच्चवर्गीय, उच्चजातीय लोग, किराए पर मकान देने के लिए राजी नहीं हो रहे थे। छूआछूत और भेदभाव के अनुभव अंततः मानसिक हीनबोध में बदल जाते हैं। इसके अतिरिक्त जाति आधारित भेदभाव एवं मानसिक उत्पीड़न की प्रक्रिया से गुजरने वाले दलितों के अनुभव कर्दम जी महसूस करते रहे हैं। 'तलाश' कहानी का रामवीर कोई और नहीं अपितु जयप्रकाश जी स्वयं हैं। कहानी में सृजित 'रामवीर' और 'रामबती' दोनों चरित्र तत्कालीन समय में कहानीकार के अनुभवों से निर्मित जीवन-संदर्भ और मानसिक स्थिति को उजागर करते हैं।

21.9 सारांश

'तलाश' कहानी समाज में प्रचलित जातिवाद और दलित शोषण के खिलाफ मुक्ति-संघर्ष की अभिव्यक्ति है। इस कहानी के माध्यम से जयप्रकाश कर्दम जी ने एक ओर समाज की जड़वादी मानसिकता की आलोचना की है वहीं दूसरी ओर दलितों में पैदा हुए आत्मसम्मान, वैचारिकी, ज्ञान, संघर्ष आदि को सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज की सरंचना जातिवादी रही है। समय के अनुसार इन परम्पराओं और संरचना में जो बदलाव आना चाहिए था वह संभव न हो सका। वैश्वीकरण और औद्योगिक विकास के कारण लोगों के रहन सहन में तो बदलाव आ गया परन्तु सोच ज्यों की त्यों जड़वादी रही। जिसके कारण समाज की संरचना जातीय आधार पर और अधिक जटिल होती चली गयी। जातिवाद का यह दानव भारतीय व्यक्ति के मन में इस तरह घर कर गया है कि दलित व्यक्ति चाहे जितनी उन्नति कर ले, अपनी काबलियत से आगे बढ़ जाए

लेकिन जाति के आधार पर हमेशा शोषण का शिकार हो जाता है। इतना ही नहीं भारतीय समाज में यदि कोई दलित पढ़-लिख जाता है तो उसको लोगों का कटाक्ष सहन करना पड़ता है। सदियों से चली आ रही इस संरचना को बदलने की आवश्यकता है। धर्म के नाम पर जो भी अमानवीय व्यवहार दलितों के साथ हुआ है उस व्यवहार में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। यदि जाति के आधार पर दलित की कुशलता को नकारा जाता है या फिर प्रताड़ित किया जाता है तो यह उचित नहीं है। इन सभी अन्यायों, शोषण, अत्याचार, भेदभाव से उपजी मानसिक शोषण की त्रासदी एक दलित को विद्रोह करने के लिए मजबूर करती है।

इस प्रकार 'तलाश' कहानी के अध्ययन से हम दलित शोषण, वेदना और विद्रोह से परिचित होते हैं। हमें दलित साहित्य आंदोलन में जयप्रकाश कर्दम जी का योगदान और स्थान का ज्ञान हुआ है। इसके अलावा उनके लेखन की वैचारिकी और साहित्यिक योगदान से परिचित किया गया है। उनके अनुसार शोषण मुक्ति की दिशा में प्रत्यक्ष तथा वैचारिक संघर्ष एक सकारात्मक परिणाम लेकर आएगा।

21.10 अभ्यास

1. 'तलाश' कहानी की अंतर्वस्तु पर विचार कीजिए।
2. 'तलाश' कहानी के चरित्र रामवीर की सोच और संवेदना को स्पष्ट कीजिए।
3. 'तलाश' कहानी की भाषा पर विचार कीजिए।

21.11 खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

अर्जुन डांगले, दलित साहित्य : एक अभ्यास, 1978, महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मंडल, मुम्बई।

बाबुराव बागूल, दलित साहित्य आज का क्रान्तिविज्ञान, दीक्षा प्रकाशन, नागपुर।

रमणिका गुप्ता, दलित चेतना : सोच, 1998 नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग।

विमल थोरात, मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक राजनीतिक चेतना, 1996, हिन्दी, बुक सेन्टर, नई दिल्ली।

रजतरानी मीनू, नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, 1996, दलित साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली।

ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।